



# ‘उर्वशी’ में अभिव्यक्त सौन्दर्य-चेतना

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ की एम० फिल्०  
उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु शोध-प्रबन्ध

१९७६

निर्देशक :

डॉ० गिरिधारीलाल शास्त्री

एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) पी-एच० डी०  
रीडर

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,  
अलीगढ़

प्रस्तुतकर्ता :

श्रीचन्द शर्मा

एम० ए०

## पुरावाह \*\*\*\*\*

प्रेम और सौन्दर्य की भाषा मूक होने के साथ-साथ अत्यन्त अर्थगति एवं समरूपगति होती है। कवि का हृदय अत्यन्त भावुक होता है। इस कारण कवि प्रेम और सौन्दर्य का आराधक, दुष्टा और मुष्टा होता है। साहित्य तथा कला के क्षेत्र में सौन्दर्य का विशेष महत्त्व है। काव्य-रचना में अनुभूति की दृष्टि से तथा शिल्प की दृष्टि से भी सौन्दर्य नितान्त आवश्यक है। काव्य की सौन्दर्य-तैत्तना का विशेष निरूपण सौन्दर्य शास्त्र के सैदान्तिक मान दण्टी के आधार पर किया जाता है। वस्तुतः सौन्दर्य एक अकथनीय विषय है। सौन्दर्य का अण-अण परिवर्तनशील होना इसकी सबसे पहली आवश्यकता है - अण-अण सम्पत्तामुपैति तदेव रूप रमणीयताः।<sup>1</sup> यही कारण है कि प्रत्येक युग के सौन्दर्य शास्त्रीय प्रतिमान और तत्कालीन अभिव्यञ्जना पद्धतियाँ प्रायः कति-प्रतिभा और रस-परिचय के अनुसार परिवर्तित होती रहती हैं।

काव्य-सौन्दर्य के मर्म और मूल्यांकन के लिये अभी तक मार्मकात्मिक और सावैदिक मूल्यांकन का निर्धारण नहीं किया जा सकता है। सौन्दर्य-बोध के लिये सदैव नवीनता का ग्रहण होता है। स्वतन्त्र सौन्दर्य दर्शन और सौन्दर्य के उचित मूल्यांकन के लिये प्रत्येक युग में नवीन सौन्दर्य-बोध और स्वतन्त्र कला दृष्टि की आवश्यकता होती है।

कविवर रामधारी सिंह दिनकर विरचित उत्तरी नामक गीतिनाट्य प्रसादोत्तर काल की सर्वाधिक चर्चित, गौरवशाली एवं महत्त्वपूर्ण कृति है। कुशीर और रहिमरथी में पौराणिक आख्यानों के माध्यम से उत्तम आधुनिक पुरनों का समाधान खोजने वाले दिनकर ने 'उत्तरी' में भी पुराना और उत्तरी

के इतिवृत्त द्वारा वर्तमान शिक्षा पद्धति तथा पाश्चात्य सभ्यता के स्वस्वरूप दिनों-दिन व्याप्त होने वाले विविध काम सम्बन्धी के पुरानों का समाधान प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। इस दृष्टिसे 'उर्दू' में युग कैसा कति ने निश्चित रूप में एक ऊँचे विषय की स्वात्मक रंग से अभिव्यक्त करने का साहसिक कदम उठाया है। वस्तुतः 'उर्दू' अपने कथ्य और शिल्प दोनोंही दृष्टियों में पाठकों को युगानुगुण, नवीन, छिछ दिव्य एवं समशील सौन्दर्य-चेतना।

। का बोध कराती है। सौन्दर्य के विभिन्न माकदण्डों के आधार पर काव्य कृति के मूल्यांकन की दिशा में प्रयास किये जा रहे हैं, किन्तु 'उर्दू' का मूल्यांकन इस दृष्टि से जगभरा नहीं किया गया है। प्रस्तुत बहु शोध-प्रबन्ध में हम अभ्यास की पूर्ति करने का सधुसम प्रयास किया गया है।

उर्दू के सौन्दर्य पर एक विश्लेषण - विश्लेषण में सुनिश्च के निम्ने शोध - विषय-। उर्दू में अभिव्यक्त सौन्दर्य चेतना। को चार स्वतन्त्र अध्यायों में वर्गीकृत किया गया है। प्रथम अध्याय में सौन्दर्य के स्वरूप और उसकी स्थिति से सम्बन्धित है। इसी अध्याय में 'दिक्कर' की सौन्दर्य सम्बन्धी वैचारिकता को भी स्पष्ट किया गया है। द्वितीय अध्याय का विषय विषय है - उर्दू की कथगत सौन्दर्य-चेतना, जिसका साकल्य तथा परम्परा गुणिन यथार्थ और सम के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। तृतीय अध्याय में 'उर्दू' में मिश्रित सौन्दर्य के विविध रूपों का उद्घाटन - प्राकृतिक तथा मानवीय - सौन्दर्य के विशिष्ट सन्दर्भ में किया गया है। चतुर्थ अध्याय उर्दू की शिल्पगत सौन्दर्य चेतना से सम्बन्धित है। इसमें उर्दू के कला-कौशल की - भाषा, शिल्प, प्रतीक, मिथ्य, अनुप्रास-योजना और अन्य आदि के सन्दर्भ में बताया गया है।

मेने इस मौलिक बहु शोध-प्रबन्ध को जेस गुरुवर डा० गिरिधारी लाल शास्त्री, वरिष्ठ रीडर हिन्दी विभाग कबीर मूनिम विश्वविद्यालय

बलीगट, के निर्देशन में प्रस्तुत किया है। उनके सुस्पष्ट एवं पाण्डित्यपूर्ण निर्देशन के फलस्वरूप ही इसे पूर्ण किया जा सका है। उनके प्रति कृतज्ञता और आभार व्यक्त करना औपचारिकता मात्र होगी। अपने अग्रज श्री जीतम प्रकाश शर्मा के प्रति कृतज्ञता और विनय ज्ञापित करना मैं अपना परमवर्तव्य समझता हूँ। अपनी सीमित सामर्थ्य के भीतर उनके त्याग, स्नेह और सौहार्द ने ही मुझे यहाँ तक पहुँचाया है।

परमावरणीय हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० प्रेम स्वल्प गुप्त, डा० अम्बा प्रसाद गुप्त, डा० शिव कुमार शाण्डिल्य, डा० अजय सिंह एवं डा० राम सिंह ने भी मुझे समय-समय पर अमूल्य सुझाव देकर विषय वस्तु के निर्वाह में विशेष दिशा प्रदान की है। मैं इन सभी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

कियोल-

प्रस्तुतकर्ता

दिनांक.....

श्री चन्द शर्मा एम० ए०

## विषय-अनुक्रमिका

### :--उत्पत्ति में अभिव्यक्त सौन्दर्य चेतना :-

#### पूरीवाक :-

पृ० सं०

#### पुष्प-अध्याय :-

सौन्दर्य का स्वरूपगत विवेचन

1-19

-सौन्दर्य: सामान्य परिच्छेद एवं व्युत्पत्ति

-सौन्दर्य सम्बन्धी भारतीय एवं पश्चात्त्य

अवलोकनार्थ

-सौन्दर्य तत्त्वनिष्ठ अथवा व्यक्तिकनिष्ठ

-दिक्कर की सौन्दर्य सम्बन्धी तैयारिकता

-निष्कर्ष

#### द्वितीय-अध्याय :-

उत्पत्ति की अध्यात्म सौन्दर्य-चेतना

20-50

-कथा का सारांश

-कथ्य के पौराणिक आधार की सौन्दर्य -

परक भूमिका

-उत्पत्ति की युग सापेक्षता तथा मौलिक त

मूल्यम उद्भासनार्थ

-भावात्मक सौन्दर्य-चेतना: हम के परिप्रेक्ष्य में

-उत्पत्ति में अभिव्यक्त आधुनिक समस्याएं एवं मंदर्भ

-निष्कर्ष

#### तृतीय-अध्याय :-

उत्पत्ति: सौन्दर्य का व्यावहारिक निवेदन

51-91

-मानवीय सौन्दर्य-बाह्य सौन्दर्य, अन्तः सौन्दर्य

- मानव सौन्दर्य की परिधि-पुरुष-सौन्दर्य, नारी-सौन्दर्य, बाल-सौन्दर्य
- उत्तरी में मानवीय सौन्दर्य-पुरुष सौन्दर्य-बाह्य सौन्दर्य, एत आन्तरिक सौन्दर्य
- नारी-सौन्दर्य-बाह्य सौन्दर्य, आन्तरिक सौन्दर्य
- बाल-सौन्दर्य -बाह्य सौन्दर्य, आन्तरिक सौन्दर्य
- उत्तरी -प्राकृतिक सौन्दर्य
- प्राकृतिक सौन्दर्य के स्वरूप
- प्राकृतिक सौन्दर्य के भेद-आकाशीय सौन्दर्य,
- स्थलीय सौन्दर्य, जलीय सौन्दर्य
- निष्कर्ष

**चतुर्थः-अध्याय**

**उत्तरीः शिल्पगत सौन्दर्य -कला**

92-135

- भाषागत सौन्दर्य
- चित्रगत सौन्दर्य
- प्रतीकात्मक सौन्दर्य
- उपस्तुत विधायक सौन्दर्य
- मिथकीय सौन्दर्य
- सुन्दरगत सौन्दर्य
- निष्कर्ष

**उपसंहार**

136-138

पुष्प अध्याय

सौन्दर्य का स्वरूप गत विवेचन





वित्तीमति'। यद्यपि जो वित्त भी भली प्रकार चार्ज करे वही सुन्दर माना जाता है। इस कोश में हम सुन्दर शब्द के अनेक परिभाषायुक्त शब्द जैसे - सुन्दर, गार्ज, जान्ति, रवि, मनोरम आदि प्रयुक्त हुए हैं। किन्तु मोन्दर शब्द की परिभाषा उपर्युक्त एवं समीचीन व्युत्पत्ति काव्यशास्त्र कोश की प्रतीत होती है। हम के अनुसार मोन्दर शब्द की व्युत्पत्ति सु. रा. भा. पूर्विक रूप धातु में परस्मै (वित्तीरि वाचक) प्रयुक्त होने से हुई है। मोन्द का अर्थ है चार्ज करना तथा सु. का अर्थ सुष्ठु अथवा सौ भावित। इस प्रकार सुन्दर का अर्थ है भली - भावित चार्ज करने वाला अथवा परम खाने वाला। जैसे हम शब्द की व्युत्पत्ति भाषाविशेष की दृष्टि से समझें धातु भी हो सकती है। सु. नामागि अर्थात् सु. की प्रसार और नन्दयति अर्थात् प्रगल्भ करता है। इस प्रकार जो सु. की प्रसार में प्रगल्भ करता है वह सुन्दर है। सुन्दर का चार्ज करने वाला अथवा जानन्वित करने वाला गुण ही मोन्दर कहा जायेगा। इस प्रकार मोन्दर भाव वाचक होता है जो कि किसी भी भा. विचार अथवा वस्तु का आकर्षक और सुष्ठु करने वाला गुण है। मोन्दर नामक इस विशिष्ट लोभ के लिये ज्ञान आनन्द क्रियात्मक वृत्ति आदि का सामञ्जस्य निहित है।

मोन्दर शब्द की पर और व्युत्पत्ति को प्रस्तुत करता है लोकोक्तियों में ६० रामेश्वर लान लोकोक्तियों द्वारा स्थापित की गयी है उनके अनुसार 'मोन्दयति इति पुनरम्, इस भावः मोन्दरम्' सुन्दर को जो वाला ही वह सुन्दर और जिसका भाव उदा. है वह मोन्दर कहा जाता है। सुन्दर का अर्थ स्त्री अर्थात् जो किसी की भावित करने वाला हो, उसे खाने वाला सुन्दर हुआ। मोन्दर हृदय पर नैसर्गिक प्रेम की भी बात का प्रभाव प्रभाव करता ही है अतः उसे इस अर्थ में ग्रहण करना उचित है।

1-सु. भा. कोश : पृ. 714

2-वाचस्पत्य लस. कोश : पृ. 5313

3-६० रामेश्वर लान लोकोक्तियाँ : साधुनिक विजयती लोकोक्तियाँ हैं प्रेम और मोन्दर, पृ. 141

सुन्दर शब्द की सु + दृ + लप के संयोग से भी उत्पत्ती मानी गयी है। इस संयोग में सु और दृ दोनों आरों का अर्थ विचारणीय है। सु लपट के साथ दृ का अर्थ है भीषण प्रकार द्रावित वा द्रवित बनना। इससे साथ ही सुन्दर लगाकर यह अर्थ हुआ कि सुन्दर यह है कि जो हृदय को भीषण प्रकार द्रावित वा द्रवित करे।<sup>2</sup>

श्री० एम० बापू के संस्कृत हिन्दी शोध के आधार पर तर्कसिद्ध मुताबिक  
मुत्तम शब्द मुत्त + म् = मीति के समान होता है ।<sup>4</sup>

[illegible]

॥-आत्मज्ञान सिंह प्रकाश, काशी, २० ११

2-हाउ गायन भाग १: गुरुदेव श्री गुरुदेव गुरुदेव गुरुदेव श्री गुरुदेव गुरुदेव

70325

3-

4- बी० एम० एस्.टी. : संस्कृत विन्दी बोध, पृ० १११५

सौन्दर्य वस्तु का गुण होने के कारण अमूर्त के धरातल पर प्रतिष्ठित होता है तथा अमूर्त भावना विचार या गुण की सम्पत्तिकरने में भाषा का योग्यत्व अधिक बढ़ जाता है या यों कहिए कि कभी तो भाषा के बिना उसकी व्याख्या करना अभिन्नसम्भव सा हो जाता है। इच्छु, क्षीर तथा गुण आदि की मधुरता में विशिष्ट अन्तर होता है किन्तु इस माधुर्य के अन्तर की सरसता भी उपर्युक्त शब्दों में अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं -

इच्छु, क्षीर, गुहादि नाम माधुर्यान्तरं महत् ।

तदापि तथारन्यातुम् सरस्वत्यापि न शक्यते । ।

सम्भवतः मूर्तको अमूर्त के धरातल पर प्रतिष्ठित करने की सभी प्रक्रिया के प्लस्करूप सौन्दर्य विषयक अवधारणाओं में भी लगातार मतान्तर रहा है। व्याकरणिकी दृष्टि से सुन्दर विशेषण की दार्शनिक व्याख्या के संदर्भ में भारतीय तथा पश्चात्य सौन्दर्य शास्त्रियों में बहुत विवाद रहा है। सुन्दर तथा सौन्दर्य मूर्त या मधुन के धरातल से उठकर अमूर्त हो जाते हैं या ये अपने आप में अमूर्त ही बने रहते हैं। इस विषय में भारतमें एवं भारतेतरु देशों में बहुत पहने में विचार किया जाता रहा है। भारतीय एवं पश्चात्य विचारकों के अनुसार सौन्दर्य वस्तु व्यक्ति अथवा पदार्थ का गुण मात्र है, स्वयं वस्तु नहीं। जब कि भारतीय तथा पश्चात्य भौतिक वादी विचारकों के मतानुसार - सौन्दर्य वस्तु का बाह्य आकार प्रकार है जिसकी देश काल के आधार पर निश्चित सीमाएँ तथा पर्यादाएँ होती हैं।

जहाँ तक सौन्दर्य शब्द की परिभाषा का प्रश्न है भारतीय एवं पश्चात्य विद्वानों एवं आलोचकों द्वारा सौन्दर्य की अनेकानेक परिभाषाएँ अपने अपने दृष्टि कोण से प्रस्तुत की गयी हैं। सौन्दर्य एक अत्यधिक व्यापक एवं बाला शब्द होने के कारण किसी एक परिभाषा की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। हमीनिष्ठ कोई भी एक परिभाषा ऐसी नहीं है जो विवाद मुक्त तथा मार्कसमिक रूप से सौन्दर्य के स्वरूप की पूर्ण तथा वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करती हो। प्रत्येक परिभाषा में सौन्दर्य के किसी न किसी कोण को छोड़कर अज्ञात बला कर वर्णित किया गया है। यही कारण है कि सौन्दर्य की कोई सर्वमान्य परिभाषा अल्पकालिन है। सुरेन्द्र नाथ दाम गुप्त ने तो लिखा है - "सौन्दर्य के स्वरूप

सौन्दर्य के स्वरूप तथा उसके लक्षण के सम्बन्ध में हमारे देश में अभी तक कोई विचार नहीं हुआ है।

पुस्तक अध्ययन का मूल उद्देश्य सौन्दर्य सम्बन्धी परिभाषाओं का अज्ञात धर तैयार करना अथवा उनकी नुमायश लगाना नहीं है और विवेक अध्ययन अध्याय के सीमित क्षेत्र में ऐसा करना सम्भव भी नहीं। अतः हमें केवल वही भारतीय एवं पश्चात्य परिभाषाएँ ग्राह्य हैं जिनके द्वारा सौन्दर्य का सम्यक विवेचन पुस्तक किया जा सके तथा हमारी सौन्दर्य सम्बन्धी समीक्षा दृष्टि को एक ठोस आधार प्राप्त हो सके। साथ ही यहाँ हम तथा का स्पष्टीकरण करना भी अनिवार्य है कि अपने विवेचन में हमने केवल साहित्यिक सौन्दर्य और विशेषतः काव्यगत सौन्दर्य को ही आधार रूप में ग्रहण किया है। क्योंकि कि सौन्दर्य को साहित्यिक और गैर साहित्यिक रूप में व्याख्यायित करके जटिलता एवं अस्पष्टता का प्रमेला हम नहीं सहा करना चाहते। ठीक ठीक

जहाँ तक भारतीय साहित्य शास्त्र में सौन्दर्य के विवेचन विश्लेषण का प्रश्न है सर्व प्रथम संस्कृत मनीषियों की सौन्दर्य सम्बन्धी उल्लेखों से परिचित होना अनिवार्य समझते हैं। अनेक विद्वानों के अनुसार ऋग्वेद, रामायण तथा महाभारत आदि में सौन्दर्य के सांकेतिक निर्धारण के बाद कही जाती है किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि आज हम सौन्दर्य को जिस अर्थ में ग्रहण करते हैं उस रूप में उसका प्रयोग उपर्युक्त ग्रन्थों में नहीं हुआ है। आज काव्य और गद्य लक्ष साहित्य के क्षेत्र में सौन्दर्य को जो विशिष्ट महत्त्व प्राप्त है, प्राचीन संस्कृत साहित्य में प्रायः उसका उल्लेख ही रहा है। कल्पित उसे यह सम्भव नहीं हो सका। किन्तु सौन्दर्य के विषय की लेकर पारस्परिक विचार विमर्श न होने का यह अर्थ नहीं है कि तत्कालीन साहित्य में इस गुण का निस्तान्न उभाव है। प्रासंगिक रूप में ऐसे अनेक शब्द वहाँ उपलब्ध होते हैं जो कि सौन्दर्य के अर्थ में माने जा सकते हैं। संस्कृत वागमय में सौन्दर्य के तात्त्व, शोभा, कान्ति, मोहन, रमणीयता, नास्वित्य, नाकण्य आदि शब्द उपलब्ध होते हैं। जो इस तात्त्व के परिचायक हैं कि उस युग के सर्जकों के पास प्रबुद्ध सौन्दर्य कल्पना अवसर थी। किन्तु सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन करना उनकी मनोवृत्ति तथा देश-काल की भाषा नहीं थी।

संस्कृत साहित्य के अभिजात (Classical) काव्य में सौन्दर्य विवेचन अशेषाकृत अधिक संयत एवं पुभाष्यानी तंग से हुआ है इन कवियों में सौन्दर्य अभिव्यक्ति तथा सौन्दर्य सम्बन्धी मान्यताओं से इनकी समूह तथा परिष्कृत सौन्दर्य चेतना का स्पष्ट परिचय मिलता है। कवियों की कारिणी प्रतिभा के उन्मेष के कारण उनका सौन्दर्य विवेचन भी अत्यन्त मार्मिक हो गया है। संस्कृत के सुदृढ मूर्धन्य कवि कछुई कालिदास तो मूल तः सौन्दर्य के ही कवि हैं अन्य जैसे रघुन तथा सुम एवं कलात्मक सौन्दर्य के स्वरूप, सूत्र-प्रक्रिया तथा आस्वाद आदि का नैसर्गिक तथा आकर्षक चित्रण किया है। सौन्दर्य का सम्बन्ध रचना की अपेक्षा व्यंजना पर अधिक निर्भर करता है। कला दर्शन के इस महसूस का कालिदास ने अत्यन्त निपुणता से उद्घाटन किया है -

रत्नाद्यु न विद्वे स्यात्किमुतै तद्वदन्यथा ।

तथापि तस्या न त्वणं रेखया किञ्चिदन्वितम् ।<sup>1</sup>

अर्थात् चित्र में जो कुछ उक्ति नहीं था, उसका मैंने संशोधन किया है, फिर भी उसका आकर्षण रेखाओं के द्वारा व्यक्तित्व ही व्यक्त हो सका है। सौन्दर्य के पुभाव के सम्बन्ध में कालिदास का स्पष्ट अभिप्राय है कि सौन्दर्य चेतना का परिष्कार या उन्नयन करता है दुःवृत्तियों की और तन्मुख करने वाला रूप सौन्दर्य की सेवा का पर्याय नहीं।<sup>2</sup> कालिदास की भावित भव्यता भी मूलतः भावना के कलाकार हैं इनके सौन्दर्य चित्रण में रघुन सौन्दर्य के भव्य रूप के दर्शन होते हैं, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु उनकी प्रतिभा वास्तव में सूक्ष्म या आन्तरिक सौन्दर्य के अंजन में ही अधिक रमी है। उनका प्रसिद्ध उद्गरण "एकौटमः कृष्णवर्णं वस्तुतः सूक्ष्म अथवा हृदय सौन्दर्य का ही सूत्रक है जिसका तात्पर्य है कि मानवीय भावना रस अर्थात् काव्य सौन्दर्य का मूल आधार है।

महाकवि माघ ने सौन्दर्य को चिर एवं गवीन आकर्षण के पर्याय अर्थों में ग्रहण किया है - "एते एते यन्नक्तसामुपैति तदेव रूपं रमणीयताराः।"<sup>3</sup>

1-कालिदास : अभिज्ञान शाकुन्तलम्, सू० अंक 2, श्लोक 9.

2-महेंद्र प्रताप शास्त्री : कालिदास कुमार सम्भत्तम्, पृ० 82

3-माघ : शिशुपाल बध, 4/17 पृ०

इसी प्रकार वाण की कृत्रिमों में कादम्बरी तथा हर्ष चरित्र में सर्पों में निर्मित निशों का शूत संजन मिलता है। श्री हर्ष आदि कवियों की रचनाओं में भी सौन्दर्य विषयक संकेत एवं तन्त्र छिपे हुए मिलते हैं।

संस्कृत साहित्य के उपर्युक्त सौन्दर्यगत अनुजीवन ने आधार पर यह कहा जा सकता है कि उसमें सौन्दर्य वर्णन लैंगिक गुण, पार्थिव तथा हृदय ग्राही रूप में हुआ है किन्तु सौन्दर्य की दार्शनिक प्रतिष्ठा वहाँ नहीं की गयी है।

सौन्दर्य शास्त्र का विकसित तथा समृद्ध रूप भारतीय काव्य-शास्त्र में प्राप्त होता है। यद्यपि यहाँ सौन्दर्य शास्त्र की स्वतंत्र स्थापना नहीं हो सकी है फिर भी सौन्दर्य के मूल तत्वों और उसके विविध पक्षों का अत्यन्त सूक्ष्म एवं गहन विश्लेषण यहाँ उपलब्ध होता है। सौन्दर्य के सूक्ष्म तत्वों के वर्णन अधिकारतः रसवादी एवं ध्वनि वादी आचार्यों के काव्य में मिल जाते हैं। इन आचार्यों में सौन्दर्य की वस्तु में प्रतिष्ठित न करके उसे भाव, गुण तथा अन्तःकरण का विषय माना है। पारिभाषिक अर्थ में रमणीय शब्द का सर्वाधिक प्रामाणिक प्रयोग पंडित राज जगन्नाथ ने किया है। - रमणीयार्थ प्रतिपादक : शब्दः काव्यम्-<sup>1</sup> रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द काव्य है। रमणीयता से तात्पर्य ऐसीकेतना से है जो लोकोत्तर आह्लाद प्रदान करती है। रमणीय शब्द का सौन्दर्य परक अर्थ में प्रयोग वामन, अभिनव गुप्त और सर्वाधिक कुन्तक की भी मान्य है।

सौन्दर्य की भाववादी तथा सूक्ष्म व्याख्या के साथ उसके सूक्ष्म रूप का विश्लेषण भी भारतीय काव्य शास्त्रियों ने पर्याप्त मात्रा में मिलता है सूक्ष्म सौन्दर्य के चिन्तकों की धारणा यह है कि सौन्दर्य मात्र, भाव, गुण अथवा मन का ही विषय नहीं है बल्कि मर्यादा सौन्दर्य तो कलाओं द्वारा वस्तु के वाह्यकार मात्रा, रूप आदि की मनभूति में है। इस मत के समर्थकों की रीति समुदाय तथा अस्कार समुदाय के मनीषियों की मान्यताएँ देखी जा सकती हैं। देखादी समुदायों के इन आचार्यों के अनुसार अस्कार ही काव्य का सौन्दर्य है, उसके मूल आकर्षण है, शब्द अर्थ का छद्म है।<sup>2</sup>

1, 2, 310 नगेंद्र : भारतीय साहित्यशास्त्र की भूमिका पृ० 83

वस्तुतः यह अवधारणा का व्यापक अर्थ है जिसमें गुण आदि भी समाहित हैं।  
रीति मात्र में काव्य-सौन्दर्य का अर्थ है विशिष्ट पद रचना और इस विशिष्ट या  
सौन्दर्य का आधार है गुण जो शब्द अर्थ का ही अर्थ है।<sup>1</sup>

वक्रोक्ति का कुन्तक ने सौन्दर्य के लिए वक्रता शब्द का प्रयोग किया है।  
वक्रता के लिए वे वक्रवृत्ति, शोभा आदि शब्दों का प्रयोग अनेक स्थानों पर करते  
हैं। इनके अनुसार वक्रता ही शब्द अर्थमय काव्य की अवकृति या शोभा है।<sup>2</sup>  
यह दृष्टिकोण समन्वय वाली है जिसमें सौन्दर्य अभिव्यक्ति है अर्थात् उसमें प्रमाणा  
और प्रेम का अभेदमय योग रहता है।

स्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य के प्रति एवं आचार्य अधिकांशतः सौन्दर्य की  
भावना, मन, उध्वता कर पना का विषय मानते हैं। इसका कारण सम्भवतः  
भारतीय दर्शन की समृद्ध परम्परा ही सकती है जिसमें मन बुद्धि एवं चित्त की  
बुद्धि पर विशेष बल दिया जाता रहा है।

हिन्दी साहित्य में आदिकाल में ही सौन्दर्य चित्रण की परम्परा मिलती  
है किन्तु सौन्दर्य की काव्य प्रतिमान के रूप में वैज्ञानिक अध्ययन तथा शोध  
परक विश्लेषण का विषय आधुनिक काल में पूर्व नहीं बनाया जा सका। आदि  
काल भक्ति का एवं रीति काल के सर्जकों तथा समीक्षकों की सौन्दर्य गत चेतना  
तथा दृष्टिकोण इतना व्यापक तथ्य परक एवं अभिन्न नहीं है जितना कि  
आधुनिक काल के हिन्दी रचनाकारों तथा आलोचकों का।

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने काव्य शास्त्र के अन्य प्रतिमानों की भाँति  
सौन्दर्य के विषय में भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनके अनुसार- 'सौन्दर्य  
बाहर की कोई वस्तु नहीं है मन के भीतर की वस्तु है -----  
जैसे वीर कर्म से पृथक् वीरत्व कोई पदार्थ नहीं वैसे ही सुन्दर वस्तु से पृथक्  
सौन्दर्य कोई पदार्थ नहीं। कुछ वस्तुएँ रूप- रंग के कारण हमारे मन में आते ही  
थोड़ी देर के लिये हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उनका  
ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में परिणत

1, 2, 50 नगेन्द्र भारतीय साहित्यशास्त्र की मूल्यांकन- ६०११,

हो जाते हैं हमारी अस्त:मत्ता की यही तथाकार परिणति सौन्दर्य की मूल अनुभूति है।<sup>1</sup> सौन्दर्य शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान डा० हजारी बाल शर्मा का कहना है कि - 'अपनी अनुभूति, स्मृति, कल्पना द्वारा आनन्द की उत्पन्न करने वाले वस्तु के गुण को सौन्दर्य और वस्तु को सुन्दर कहते हैं।'<sup>2</sup> तत्सतः सौन्दर्य स्वयं एक मानसिक अनुभूति अथवा प्रतीति की मात्र है जिसे हम किसी विशेष परिस्थिति में अनुभव करते हैं तथा आनन्दित होते हैं। इसीलिए डा० राम विलास शर्मा ने लिखा है - 'प्रकृति, मानव-जीवन, तथा बलिष्ठ कलाओं के आनन्ददायक गुण का नाम सौन्दर्य है।'<sup>3</sup> स्वयं सौन्दर्य हृदय की परिष्कृत, पवित्र, उभय और व्यापक बनाता है। यह उसकी उपयोगिता है अतः सौन्दर्य एक मानसिक अनुभूति या प्रतीति मात्र है जिसे हम किसी विशेष परिस्थिति में अनुभव करते हैं। साहित्य में सौन्दर्य तत्त्व नामक पुस्तक में डा० हरबश सिंह ने सौन्दर्य की मूल-सूत्रम अस्त में आत्मा की अभिव्यक्ति माना है।<sup>4</sup> डा० अम्बा प्रसाद सुमन सौन्दर्य की स्थापना अतः एवं वाक्यः, तिथि और तिथि के सामंजस्य में ही मानते हैं इनके अनुसार रीति के बाने नैनों के सामने रिझाने वाला रूप भी होना चाहिए। इसी तरह हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार - 'सुन्दरता सामंजस्य में होती है। सामंजस्य का अर्थ होता है किसी वस्तु का बहुत अधिक और किसी वस्तु का बहुत कम न होना।'<sup>7</sup>

---

1-डाचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि [प्रथम भाग], पृ० 164-65

2-डा० हजारी बाल शर्मा : सौन्दर्य शास्त्र, पृ० 10

3-डा० राम विलास शर्मा : समालोचक, सौन्दर्य शास्त्र विशेषांक, पृ० 176

4-बाबू गुलाब राय : सौन्दर्य शास्त्र विशेषांक, पृ० 5

5-हरबश सिंह : सौन्दर्य विज्ञान, पृ० 55-56

6-डा० राम विलास शर्मा : समालोचक, सौन्दर्य शास्त्र विशेषांक, पृ० 59

7-डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : कल्पलता, पृ० 144-45



हिन्दी समीक्षकों की सौन्दर्य सम्बन्धी स्थापनाओं के साथ-साथ उन्हीं सर्जकों की सौन्दर्य विषयक मान्यताओं से परिचित होना भी समीचीन है। प्रेम और सौन्दर्य के कवि जयशंकर प्रसाद के शब्दों में- उज्ज्वल तरदान केतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं।<sup>1</sup> प्रसाद ने सौन्दर्य को मत्त एव शिखर से परिपूर्ण होने के कारण तथा नैसर्गिक मानते हुए तरदान तुल्य माना है। मानक सौन्दर्य बोध के सहारे ही ईश्वरीय सत्ता का अनुभव करता है। वस्तुतः प्रसाद की सौन्दर्य सम्बन्धी दृष्टि उदात्त है तथा आध्यात्मिकता से संपृक्त भी। वे सौन्दर्य के दर्शन समरसता में ही करते हैं क्योंकि उसस्थिति में ऊँच आनन्द की प्राप्ति सम्भव है जो सौन्दर्य विज्ञान का मूल उद्देश्य है।

हिन्दी की प्रसिद्ध साया वादी कछेरठि कवयित्री महा देवी तर्पा के अनुसार सौन्दर्य एक बेसी सुख अनुभूति है जो वस्तुओं, रंगों, रसों आदि की विशेष साम्यस्य पूर्ण स्थिति में अनायास उत्पन्न हो जाती है।<sup>2</sup> हिन्दी के सच्चे प्रगतिशील कवि एवं समीक्षक की विवेकाओं का एक साथ प्रतिनिधित्व करने वाले गजानन माधव मुक्ति बोध ने पहली बार सौन्दर्य की जीवनानुभूतियों के व्यापक संदर्भों में विश्लेषित करने का सफल प्रयास किया है। क्योंकि आनन्द-समक अनुभूति जीवनानुभूतियों के द्वारा भी उपलब्ध हो सकती है। सर्वप्रथम मनुष्य जीवनानुभव का आधार ग्रहण करता है इसके पश्चात् अपनी आत्म बल दशा (वैयक्तिक सुख-दुःख) का परिहार करता है और अन्त में जीवनानन्द की अनुभूति करता है जो सौन्दर्य का प्रमुख उद्देश्य है। अतः मुक्ति बोध के अनुसार "सौन्दर्यानुभूति और जीवनानुभूति, इन दोनों के अन्तर्निहित, परस्पर सत्त्व सम्बन्धी एवं इनकी एकता से ही सौन्दर्य के मर्म का उद्घाटन सम्भव है। दूसरे शब्दों में सौन्दर्यानुभूति जीवनानुभूतियों के गुणात्मक परिवर्तन का ही नाम है।"<sup>3</sup> वस्तुतः जीवन के अनुभव तथा सौन्दर्य की अनुभूति की निकटता पर आधारित सौन्दर्य के अस्तित्व की मान्यता पर मुक्ति बोध प्रतीति जन्म मनावृत्ति का ही एक रूप मानते हैं। उनका कहना है कि - सौन्दर्य अनुभूति

1- जय शंकर प्रसाद : कामायनी (सज्जामर्ग), पृ० 101

2- डा० कुमार तिमल : सायावादी का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन, पृ० 77

3- मुक्ति बोध : नये शास्त्र का सौन्दर्य शास्त्र, पृ०

केवल कलाकार की विधि नहीं है, वह प्रत्येक गुण प्रत्येक अवस्था और प्रत्येक क्षणी के व्यक्ति की होती है ----- न्यूनाधिक मात्रा में अपने अपने अनुसार अपने से परे जाना, अपने से ऊपर उठकर जीवन जगत् में रमना तथा उदात्त प्रेरणाएं ग्रहण करना वास्तव में एक गहन मानवीय प्रक्रिया है।<sup>F</sup>

भारतीय वागमय में सौन्दर्यानुभूति का प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत करते समय सर्जकों एवं समीक्षकों की दृष्टि हम की व्यंजना पर अवश्य रही है। हमें भी सौन्दर्य की व्यक्तिनिष्ठ परिकल्पना की परिणति वस्तुतः में हम ही है। भारतीय मनीषियों ने सौन्दर्य का दार्शनिक विवेचन प्रारंभ नहीं किया है किन्तु पश्चात्य साहित्य में सौन्दर्य का मूलभूत दार्शनिक परिदृश्य में प्रारम्भ होता है। वहाँ सौन्दर्य शास्त्र की दार्शनिक के एक अभिन्न अंग के रूप में स्वीकृति मिली है। अतः दार्शनिक चिन्तन के समक्ष सौन्दर्य चिन्तन का विद्यमान रहना सर्वथा स्वाभिन्न ही है।

यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने तत्त्व चिन्तन की परिधि में सौन्दर्य का विवेचन किया है। उनके अनुसार - "सौन्दर्य की मूल्य व्यक्ति विशेष के गुणों में ही होती है।"<sup>2</sup> इसके पश्चात पश्चात्य देशों की सौन्दर्य सम्बन्धी मान्यताओं में प्लोटिनिज्म आधारणा का विशेष महत्त्व है। इसके सर्व प्रमुख प्रतिनिधि प्लोटिनिज्म (Platinus) है। उनके अनुसार सभी वस्तुएँ एक वस्तु से उत्पन्न हैं जो अपने में सुन्दर और उदात्त है। क्योंकि कि मूल वस्तु स्वयं सुन्दर है अतः उससे उत्पन्न वस्तुएँ सुन्दर ही होंगी। सौन्दर्य सम्बन्धी यह विचार बड़ा रहस्य लादी है क्योंकि प्लोटिनिज्म के अनुसार यदि किसी वस्तु का प्रत्येक अंग सौन्दर्य में नहीं है तो उससे मिलकर बननेवाली सम्पूर्ण वस्तु सुन्दर नहीं हो सकती।<sup>3</sup>

- 
1. The Principle of Goodness has reduced itself to the law of beauty. B. Bosanquet - History of Aesthetics. Page 33.
  2. All things are emanations from the one, which knows as the good. In so far as these emanations are perceptible to our external senses, we experience them as beauty. .... nothing can partake of beauty whose parts are not beautiful in themselves. Encyclopaedia Americana, Vol. I, page 199.

18वीं शताब्दी में आकर पारचात्य समीक्षकों व चिन्तकों के द्वारा सौन्दर्य का व्यवस्थित विश्लेषण दृष्टि गोचर होता है। इस युग के सौन्दर्य वादी विचारकों में कान्ट का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कान्ट से सौन्दर्य शास्त्रीय विश्लेषण के एक नये अध्याय का प्रारम्भ होता है। कान्ट के अनुसार-“सौन्दर्य सीमित शक्ति में असीमित मत्ता का आभास जो हमें आनन्द प्रदान करता है। कोई भी वस्तु तब सुन्दर कही जायेगी जब वह विरोधी वस्तुओं में सामंजस्य स्थापित कर सकेगी।”<sup>1</sup> सौन्दर्य विश्लेषण के क्षेत्र में कान्ट का यही योगदान है कि वे सौन्दर्य को उदात्त तत्त्व (Sublime Element) मानते हैं। जो पहले हमें तैय्यक स्तर पर तैदना का आभास कराता है तथा बाद में वही समष्टि की तैदना का रूप ग्रहणकरता है। सौन्दर्य क्षेत्र के एक और तैय्यक, संस्थापक तथा विश्लेषक बर्नार्ड वींगरते हैं। उनके अनुसार सौन्दर्य की छौंज विचारों के परिप्रेक्ष्य में मानी जा सकती है उनकी दृष्टि में सौन्दर्य का निर्णय तैय्यक भावनाओं के द्वारा न होकर माननीय भावनाओं की प्रवृत्ति (Tendency) के आधार पर किया जाना

1. whatever pleases universally and without a concept is beautiful. A thing is beautiful when it corresponds to the nature of the cognitive faculty or when it brings harmony among human faculties.

Kant : Critic of Judgement. Page

चाहिए। कला की इसी प्रकार के सौन्दर्य की आवश्यकता है।<sup>1</sup>

प्रतिक्रिया वादी विचारक जेन जेनो ब्रुसे (Jane de la Croix)

के मतानुसार पूर्ण आत्माभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है और अपूर्ण आत्माभिव्यक्ति ही कुपता है।<sup>2</sup> प्रेम एवं सौन्दर्य के सफल निष्पन्नता कवि जॉन कीट्स के शब्दों में—“सुन्दर ही सत्य है और सत्य ही सुन्दर है। यही वह सब कुछ है<sup>3</sup> जिसे तुम इस धरती पर जानते हो। तथा तुमको जानने की आवश्यकता है।

उपर्युक्त भारतीय एवं पश्चात्त मनीषियों द्वारा दी गयी समस्त परिभाषाओं में सौन्दर्य को वस्तुगत, आत्मगत भावात्मक तथा कलात्मक रूप में व्याख्यायित एवं विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः सौन्दर्य काव्य अथवा कला का अनिवार्य तत्त्व कहा जा सकता है जिसकी प्रतिष्ठा प्रत्येक कवि अथवा कलाकार अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षक शक्ति, कल्पना शीलता तथा कुशल अभिव्यक्ति के द्वारा करता है। काव्य में किसी भी वस्तु, भाव अथवा विचार की पूर्ण एवं कलात्मक तथा आनन्ददायिनी अभिव्यक्ति को सौन्दर्य कहा जा सकता है। जगत् के सौन्दर्य पर जो एक आवरण गढ़ा हुआ है कला उसे हटा देती है। सौन्दर्य के लिए सामग्र्य अनिवार्य सा है। सौन्दर्य को सम्पूर्ण अभिव्यक्ति अथवा उसके मर्म का उद्घाटन तभी सम्भव है जब दुष्टता एवं दुश्चर्य में पारस्परिक, अन्तरेक्य स्थापित हो जाये। सौन्दर्य का यह गमन्तर वादी रूप ही उदात्त, सुन्दर और स्वच्छ कहा जा सकता है। सौन्दर्य अपनी कसीमता में महान होता है। जब कोई वस्तु, मीमांसा के अन्दर हमारी इन्द्रियों को रुचि कर लगती है, तब वह सुन्दर है, किन्तु वही वह निश्च-

- 
1. The beautiful is - "that which has characteristic or individual expressiveness for sense-perception for imagination, subject to the conditions of general or abstract expressiveness in the same medium. B. Bosanquet, - The introduction to Hegel's Philosophy of Fine arts. page -
  2. "Beauty is perfect self-expression, ugliness is a partial self-expression or failure to imagine with thoroughness" B.D. Croce : Aesthetics. Page -
  3. Beauty is truth, truth beauty, that's all  
Ye know on earth and all ye need to know.  
Poetical works of John Keats, Page 118.

व्यापी परिपूर्णता में अपनी असीम सत्ता लेकर प्रकाशित होती है, तो वह महान है। सौन्दर्य की स्थिति रागात्मक और बाह्यिक मूल्यों के बीच की है वह एक की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म व परिष्कृत तथा दमरे की तुलना में अधिक स्मणीय होता है।

इस प्रकार काव्यगत सौन्दर्य वह तत्त्व है जिससे हमें निरपेक्ष आनन्द की प्राप्ति होती है।

सौन्दर्य वस्तुनिष्ठ अथवा व्यक्ति निष्ठ

---

उपर्युक्त विवेचन के सन्दर्भ में यह पुनः अनायास ही उठता है कि सौन्दर्य का मूल स्रोत (Source) क्या है? सौन्दर्य वस्तुनिष्ठ है अथवा व्यक्ति निष्ठ अर्थात् सौन्दर्य वस्तु का गुण है अथवा दृष्टा का भावक की प्रतीति यह उसी प्रकार का प्रश्न है कि काव्य की आत्मा इस ओर ध्वनि है अथवा अलंकार तकौनिकी रीतिवर्धित्व में? आदमी के प्राण मिर में है अथवा छंद में? सौन्दर्य की स्थिति का निर्णय करते समय भारतीय तथा पश्चात्य विद्वानों की मान्यताएँ परस्पर पर्याप्त वैभिन्न तथा वैतन्त्र्य से पूर्ण हैं।

सौन्दर्य के सपवादी व्याख्याता प्लेटो, अरस्तू, प्लॉटीनस, लीगेस, बोमा सौन्दर्य की स्थिति वस्तुगत मानते हैं उनके अनुसार सौन्दर्यवस्तु का गुण है सामान्यतः वस्तु के गुण होते हैं आकार प्रकार की संरचना, रंग, दीप्ति, स्वादि। अतः संरचना के इन तत्वों के समन्वित रूप में ही सौन्दर्य निहित सौन्दर्य की वस्तुगतात्मा दो प्रकार की होती है - भौतिक सत्ता और गौ सत्ता।<sup>1</sup> उदाहरणार्थ- गुलाब के फूल की भौतिक सत्ता का निर्माण उन भागों से हुआ है जो वनस्पति शास्त्र तथा रसायन शास्त्र का विषय है किन्तु उस गौवर सत्ता उसकी पंखियों के आकार प्रकार, परस्परगुणन, रंग आदि का समन्वय है।

---

1-डा० श्रीराम : भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, पृ० 27

अतः कोई वस्तु हमें एक इसलिए सुन्दर लगती है क्योंकि कि उसमें रूप गत सौन्दर्य विद्यमान है। इसके विपरीत कुछ मनीषियों की धारणा यह है कि ०० सौन्दर्य की स्थिति विषयिगत (Subjective) है। डॉ. कान्ट, कोले प्रसाद रामचन्द्र शुक्ल दिनकर आदि हमी मत के समर्थक हैं। इनके अनुसार सौन्दर्य वास्तव में चेतना या प्रतीति रूप है, वस्तु रूप नहीं। सौन्दर्य का सम्बन्ध भावना में है वस्तु में नहीं। सौन्दर्य ऐच्छिय-वात्मिक अनुभूति है। जिसे भाव वादियों ने ऐच्छिय मानसिक प्रतीति भी कहा है। कोई भी वस्तु हमें इसलिए सुन्दर लगती है क्योंकि कि हमारे अन्दर उसे देखने परमत्त्व की एक विशेष दृष्टि विद्यमान है।

किन्तु वास्तव में सौन्दर्य की सत्ता न तो पूर्णतः वस्तुगुण है और न विषय रूप में विषयिगत।<sup>2</sup> सौन्दर्य की सृष्टि के लिए दो तत्वों की आवश्यकता होती है वे हैं विषयी और विषय। किन्तु विषय और प्रगता द्वारा उसकी प्रतीति दोनों एक दूसरे से पृथक् अथवा अन्यथा नहीं रहते अतः सौन्दर्य न तो पूर्णतः प्रमाणा की चेतना में रहता है और न पदार्थ में। उसकी सत्ता वस्तुतः दोनों के समुचित सादात्म्य में अथवा समन्वय में है। मैरिटेन, कैरट सेन्टायना, डा० मोन्द, डा० रामविनास शर्मा, डा० कण्ठेन बाल, डा० हजारी प्रसाद टिबेटी, मुक्ति बोध आदिकि ज्ञान आलोकिक हमी मत के समर्थक रहे हैं।

सौन्दर्य की स्थापना एक गौण तत्त्व है किन्तु वस्तु के आध्यात्मिक तत्वों का समन्वय प्रायः शुद्ध और जटिल रीति में ही सम्पन्न होता है। सौन्दर्य दृष्टि का अपना वैशिष्ट्य है जो व्यवहार दृष्टि में नहीं पाया जात व्यवहार दृष्टि जहाँ हानि-लाभ की गणना अथवा उपयोग की भावना की महत्व देती है वहाँ सौन्दर्य दृष्टि में उसका सर्वथा अभाव होता है। सौन्दर्य दृष्टि की दृष्टि निर्वैयर्थिक, राग-द्वेष से मुक्त सहस्र और मार्तभौमिक होती है जिसमें कल्पना का विशेष योगदान रहता है। इस प्रकार वास्तव सम्बन्धी से मुक्ति लक्ष्य सौन्दर्यानुभूति की अनिवार्य शर्त है

1-डा० मोन्द : भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, पृ० 26

2-डा० रामेश्वर बाल कण्ठेन बाल : आधुनिक हिन्दीकविता में प्रेम और

सौन्दर्य, पृ० 160-61

सौन्दर्य के स्वरूप का तिर लेकन, तिरवेलन करने के परभाव आत्मोक्त कवि दिनकर जी की सौन्दर्य विषयक धारणा का ज्ञान प्राप्त करना अपने शोध विषय के परफुल्ल नितान्त आवश्यक है।

दिनकर की सौन्दर्य विषयक धारणा [तेजारिक्ता] :-

---

पुस्तक अध्ययन के सन्दर्भ में स्वयं दिनकर की सौन्दर्य सम्बन्धी तेजारिक्ता से परिचित होना भी नितान्त आवश्यक है। क्योंकि उनकी में सौन्दर्य चेतना की खोज कसै समय हमें इस तेजारिक्ता का प्रतिक्षण उही न कहीं अवश्य प्राप्त होगा। दिनकर के सौन्दर्य सम्बन्धी विचार व्यवस्थित तथा एक ही स्थान पर विद्यमान न रहकर उनका चित्तित्व काव्य कृतियों तथा समीक्षात्मक लेखन में यत्र-तत्र बिखरे हुए दृष्टि गोचर होते हैं।

दिनकर यद्यपि दाह और तीर भावनाओं के कवि हैं। सर्वप्रथम उनका राजस्य राष्ट्रीय रूप ही हमारे सम्मुख आता है किन्तु कवि की यह इच्छा थी कि वह वाङ्मयात्मिक सौन्दर्य, प्रेम, काम, दर्शन, तथा मनोविज्ञान की भी अपनी कुशल लेखनी से उकेर कर हिन्दी जगत् को भेंट करे। इस अटपटा-हट की दिनकर ने स्वयं स्वीकार भी किया है - 'मुझसे तो मुझे हुंकार से ही प्रिया किन्तु आत्मा मेरी अब भी सतन्त्री में बसती है'।

स्पष्ट है कि दिनकर जी के हृदय में कामल, विनम्र एवं सुन्दर भावनाएँ भी विराजमान थीं। यह दूसरी बात है कि उन्हें अपने परिपक्व तथा समग्र रूप में फूलने की परिस्थितियाँ बहुत बाद में मिली। दिनकर के सौन्दर्य में एक ऐसी जीवनी शक्ति है, ऐसी मुखर चेतना है जो सौन्दर्य के पारखी को भी सन्देश दे सकती है किन्तु शक्ति के पुजारी को सौन्दर्य-कर्षण एक सीमा तक ही मोह सकता है। अतः उन्होंने अपने सौन्दर्य को निरूपित करते हुए कह दिया कि शक्ति ही सौन्दर्य है तथा-

---

1-दिनकर : वज्रवाच [भूमिका] पृ० 33

बल - विक्रम , माहस के करतब पर दुनिया बलि जाती है ।

और बात क्या, रक्त वीर भोग्या वसुधा कहवाती है ।

है सौन्दर्य शक्ति का अनुसर, जो भी बनी वही है सुन्दर ।<sup>1</sup>

भारतीय विचार धारा के अनुसार प्रकृति के प्रति आकर्षण में उठी मानव मन की भावार्मियाँ ही सौन्दर्य अनुभूति की जन्म दात्री हैं । किन्तु समे - समे सुन्दर मने, रूप कृपु न कोई<sup>2</sup> के अनुसार बिना सुन्दरता के सुन्दरता का, कृप के बिना स्वरूप का तथा कर्षता के बिना कोमलता का मूल्यांकन कैसे किया जा सकता है इस दृष्टि की सामने रखकर ही दिनकर ने सौन्दर्य को अपने काव्य में विविध रूपों में चित्रित किया है ।

दिनकर यह नहीं मानते कि संसार में सब कुछ सुन्दर है और साहित्य को केवल सौन्दर्य की ही आकांक्षता है अथवा साहित्य में अभिव्यक्त सौन्दर्य कोई ऐसी घासनी है जिसमें लपेट कर हमें समाज को कुनेन की गीनियाँ खिलानी है । मनुष्य जब तक व्यक्तित्व शाली है तब तक वह न तो जानी चेतना शक्ति को जबरदस्ती पुण्य की और उन्मुख कर सकता है और न सौन्दर्य की ओर बढ़ने से किसी भय से उसकी रोक सकता है। जहाँ सौन्दर्य है, वहाँ पाप भी उल्लस होगा ऐसा माना जा सकता है विधि और निषेध दोनों चेतना को अभिस्त करते हैं और चेतना जब क्षुब्ध हो जाती है वह सहज नहीं राती ।

प्राप्ति बाद के बाद में सौन्दर्य का केन्द्र समाज एवं साहित्य में मात्र नारी शरीर का समिल फल ही रह गया जब कि सौन्दर्य की वास्तविक प्रतीति तन के धरातल से मन के धरातल तक के भी ऊपर एत जाने पर भी हो सकती हो। दिनकर ने अपने काव्य में सौन्दर्य का निरूपण करते समय सौन्दर्य के सूक्ष्म और आन्तरिक गुण की अभिव्यक्ति पर ही अधिक बल दिया है । प्रस्तुत कथन की पृष्टि के लिये उर्वशी के लिये सौन्दर्य के विषय में पुरुरता की रक्ति दर्शनीय है -

सुम अनन्त सौन्दर्य, एक तन में कम जाने पर भी ,

निखिल सृष्टि में वैस क्षुब्धिक कैसे कहाव रही हो।<sup>3</sup>

1-दिनकर : रूप-राशि , पृ० 6

2-सूत्रपादक : शा० कुलदीप : काव्य-कालिन्दी, पृ० 124



सौन्दर्य चित्रण के विविध रूप में से दिनकर की दृष्टि मानवीय सौन्दर्य के कलात्मक अंकन पर ही अधिक केन्द्रित रही है। जैसे प्राकृतिक सौन्दर्य मृण्मयी की छटा भी उनके काव्य में पर्याप्त मात्रा में विकसित है। साथ ही अति सौन्दर्य को जीवन के यथार्थ बोध से संपृक्त करके ही व्यञ्जित करना चाहता है। इस स्थिति में उनका सौन्दर्य बोध सरल उपदेशक या जिज्ञासु भाव बनकर यह जानना चाहता है कि आखिर समाज में यह विषमायोजन क्यों है।<sup>1</sup> शोषित वर्ग तथा निरीह नारी को लेकर व्यक्त होने वाली सौन्दर्य-भावना का स्तर यथोचित परक रहा है।

आन्तरिक सौन्दर्य का चित्रण करते समय कवि ने अपनी मनोवैज्ञानिक समझ का भी परिचय दिया है क्यों कि उसके अनुसार आन्तरिक सौन्दर्य पुनरावृत्ति से मानव के चरित्र का ही उद्घाटन करता है। इसीलिए उर्वशी जिसका स्पाकर्षण का केन्द्र है वह भी प्रेम के क्षीभित होकर फुटवा मरा हो जाती है और प्रेम्सी से पत्नीरूप में परिवर्तित होकर अपने आन्तरिक सौन्दर्य का उद्घाटन करती है। इस प्रकार "उर्वशी का आन्तरिक सौन्दर्य पुण्य भावनाओं में संवरता है और मातृत्व पद के गौरव से दीप्त हो उठता है।"<sup>2</sup>

वास्तव में दिनकर केतना के कवि है इसलिए उन्हें केतन सौन्दर्य ही अधिक भाया है। इस का यह अर्थ नहीं कि वह सौन्दर्य केवल नारी में ही ढोउते हैं अथवा मामूली सौन्दर्य को ही अच्छा सौन्दर्य मानते हैं। सौन्दर्य के उदात्त रूप को ही कवि ने अधिक महत्ता दी है क्यों कि उसमें त्याग और समर्पण का भाव रहता है। सौन्दर्य मृष्टि के लिये दिनकर हृदय और बुद्धि का समन्वय भी आवश्यक मानते हैं क्यों कि केवल बुद्धि के संकुचित दायरे से व्युत्पन्न सौन्दर्यसु मानव को भ्रमाकर कमजोर कर देता है क्यों कि वह

1-डा० यतीन्द्र तिवारी: दिनकर की काव्य भाषा, पृ० 77

2-डा० रमेश चन्द्र जैन : राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्य कला, पृ० 71

एक फ़ीय है -

पढ़ो रक्त की भाषा को, विश्वास करो इसलिपि का;  
यह भाषा, यह लिपि मानस को कभी न भरमायेगी  
छली बुद्धि की भाँति, जिसे सुखदुःख से भरे भुवन में  
पाप दीखता वहाँ, जहाँ सुन्दरता हुलस रही है।

यद्यपि दिनकर की सौन्दर्य उद्घाटन सम्बन्धी रुचिआन्तरिक सौन्दर्य के चित्रण में ही अधिकांशतः परिलक्षित होती है किन्तु कवि सौन्दर्य के वाह्यस्थानों पर भी अछूता नहीं रह सका है। "उर्वशी" में अप्सराओं के देहिक सौन्दर्य वर्णन के माध्यम से कवि हमें अपनी सौन्दर्य परिक्षिप्त शक्ति तथा कुशल अभिव्यजना का परिचय देता है। यह मुकन्द्या का मासिक सौन्दर्य ही है जो योगी ज्यवन को भोग की ओर उन्मुख करता है। महर्षि उसके रूप का बखान करने लगते हैं -

कहा मिला यह रूप, देखते ही जिसको पावक की  
दाहकता मिट गयी, स्थाणु में पत्ते निकल रहे हैं।<sup>2</sup>

वस्तुतः संयोजन जीवन का अखण्डनीय सत्य है वही कारण है कि अधिकांश रचनाकारों ॥ कवियों ॥ की सौन्दर्य चेतना संयोजन की सहज कोमलता में अनुप्राणित रही है। दिनकर की उर्वशी भी इस कथन की अपवाद नहीं है। सौन्दर्य निरूपण में बहिर्दृष्ट संयोजना इस कृति की सबसे बड़ी विशेषता है। इसमें पूर्व और पश्चिम के विवाह, प्रेम और काम सम्बन्धी विचारों की मरम, मार्मिक और प्रभावशाली अभिव्यजना कवि की व्यापक सौन्दर्य चेतना को ही व्याख्यापित करती है। कवि की धारणा यह रही है कि जब तक शारीरिक और आन्तरिक सौन्दर्य सरिताओं का समुचित मेल नहीं होता तब तक सहज पूर्ण सौन्दर्य की कल्पना नहीं की जा सकती। उर्वशी गति नाट्य की सह-नायिका औशीनरी का चरित्र इसी वैचारिकता की ओर संकेत करता है।

1-दिनकर : उर्वशी ॥ तृतीय अंक ॥, पृ० 58

2- " " " ॥ चतुर्थ अंक ॥, पृ० 107

द्वितीय अध्याय

उर्दू की अध्यात्म मान्य-प्रेरणा

## • उर्वशी की कथगत सौन्दर्य-कथा •

### कथा का सारांश :-

• उर्वशी के कथगत सौन्दर्य का आकलन करने से पूर्व उसकी कथा का सविस्तर एवं सुगठित रूप प्रस्तुत करना उत्पन्न आवश्यक है। इस नीति के अनुसार नाट्य की कथावस्तु पाँच अंकों में विभाजित है तथा प्रत्येक अंक में एक ही दृश्य है। प्रथम अंक का सूत्रपात महाराज पुरुरवा की राजधानी प्रतिष्ठानपुर के निकटवर्ती पुष्प-कानन में सुमहारा एवं नदी के वातावरण से होता है। वे दोनों जलन्त की प्राकृतिक सुधामा एवं स्वच्छ वादनी का लुभ पात्र करते हुए आसिन्न ध्वनि की लालसा से गन्धित बातें कर रहे हैं। इसी मध्य आकाश से उतरती हुई अप्सराओं के नुपुरी व लसनाओं की ध्वनि सुमहारा नदी बहते और जिज्ञासु हो उठती है। सुमहारा लुभ ४ अंकों समन करते हुए स्पष्ट करके कहता है कि ये कामदेव की कामना का मूर्त रूप स्वर्ग की अप्सराएँ हैं जिन्हें उनकी अमृत कामनाएँ पृथ्वी पर लीच लायी हैं।

अप्सराएँ पृथ्वी पर समवेतमान करती हैं जो लसुनारा की सुधामा से सिक्त हैं। तदनन्तर रम्भा और मेनका में अमरलोक एवं मर्त्यलोक के गुण अवगुणों की लेकर विवाद छिड़ जाता है जिसमें रम्भा स्वर्ग-लोक का तथा मेनका भूलोक का पक्ष लेती है। मेनका की इस अनुरक्ति पर ध्यान करते हुए सहजन्त्रा कहती है कि कदाचित् तुम्हारे मन में भी उर्वशी की भावति मिट्टी का कोई मोहन आकर कम गया है। इस पर रम्भा बहते होकर उससे उर्वशी के साथ न जाने का कारण पूछती है। तब सहजन्त्रा विगत हाटना की जो उर्वशी के दैत्य द्वारा अपहरण तथा पुरुरवा द्वारा उसकी मुक्ति से सम्बन्धित है, स्पष्ट करती है। फिर तीनों ने वे इस मध्य की लेकर तर्क-वितर्क होता है कि क्या उर्वशी का मानवी के रूप में पृथ्वी पर एक ही बाहु-पारा में जकड़े रहना अध्यात्म पुसव कष्ट सहना उचित है। तभी कि लंका का आकर उर्वशी की पुरुरवा के उपवन में तपस्थिति की सूचना देती है और बताती है कि पुरुरवा उर्वशी की लम्बे अर्धों में सुग

कहता है। सुर्चादि से पूर्व सभी अपराध समवेत गान करती हुई आकाश की उठ जाती है। यह प्रथम अंक का समाप्ति बिन्दु है।

द्वितीय अंक की घटना का केन्द्र स्थल पुरुरवा का अन्तःपुर है। इस अंक में रानी आंशुमन्ती और उनकी सखियाँ महाराज के उत्तरी के साथ गमन के विषय में वातावरण करती हैं निपुणिका इस विरोध की भाव्य की विरुद्धता बताती है या फिर उत्तरी का कोई जादू टोना यह सुनकर महारानी आंशुमन्ती की अन्तर्द्वारा फूट पड़ती है। तथा वे उत्तरी की तरहतरह से प्रेमती है। इसके आगे निपुण का, मदनिका तथा रानी पुरुष एवं नारी के प्रेम पर गोपनी करती है और रानी अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है कि पुरुष स्वभावतः अलभ्य वस्तु की ओर दौड़ता है उसे कम में रखा प्रेमिका का कार्य है गृहणी का नहीं। सभी अन्वुकी यह सूचित करता है कि महाराज पुनः प्राप्ति हेतु गन्धमादन पर ईश्वराज्ञा में व्यस्त है अतः आप भी धर्म साधना करती रहें। हम कपट सम्देश की सुनकर रानी का अस्मर्न होउता है और वे नारी की असहायता पर आशु कहतीरहती है।

तृतीय अंक की रंग स्थली गन्धमादन पर्वत है जहाँ पुरुरवा एवं उत्तरी नामा-प्रेम तीना में मग्न है तथा प्रेम एवं काम के स्वरूप पर गम्भीर विचार विनमय करते हैं। उत्तरी कहती है कि मैं नारी मुलभ सज्जा को त्याग कर अपनी काम लुप्ति के हेतु केवल आपके लिये भूषण अवतरित हुई हूँ। इस पर पुरुरवा कृतज्ञता भाषित करते हैं और कमल की भाँति जल और पंक में निर्निष्ठ अपने स्वभाव की स्पष्ट करते हैं। इन निर्बोध युक्त बातों से उत्तरी खीझ उठती है और सोचती है कि कैसा क्या ऐसा सम्भव है।

पुरुरवा जिज्ञासा व्यक्त करते हैं कि पता नहीं ऐसी कौन सी अदृश्य सत्ता है जो मानव को छुकर नहीं छिपने देती। बुध्द, आदिमानव से परेप्रेमिका वरम सत्य क्या है। मेरी छटावनी भी भुवाएँ, सूर्यमदृश भाव, मिन्धु जैसा उदयमान बल, हनुमत्सु बहने की क्षमता, नारी के कटाक्ष एवं मुस्कान से जहाँ परास्त हो जाते हैं। उत्तरी उसे पुरुरवा की कातरता एवं भ्रम कहती है और उसे ऐन्द्रिय भोग की ओर प्रेरित करती है। वह काम भावना की जाप एवं

पुण्य दोनों प्रकार का बताती है व निरकाम काम का सम्देश देती है। अपने को अपुर सुन्दरी और विश्वप्रिया विद्वन्मन नारी बताता है राजा भी अपने को विश्वपुरुष समझते हुए भविष्य में सदैव उर्वशी के साथ रहने का संकल्प करते हैं। यह वैचारिक आदान प्रदान तथा ऐन्द्रिय उपभोग तर्ज पर्यन्त चलता रहता है।

चतुर्थ अंक का प्रारम्भ महर्षि ज्ञान के आश्रम में होता है। इसमें त्रिवेद्या तथा उर्वशी के नव जात पुत्रायु की गोद में लिये मुकुन्दा का वातावरण चलता है। मुकुन्दा महर्षि ज्ञान का उदाहरण देते हुए सतत-साधना के बाद प्राप्त भोगानन्द एवं एक पतिकृता के आदर्श की स्थापना करती है और पतिकृता की विनम्रता एवं निष्कलता की चिरायितना तथा लक्ष्मीगी अप्सराओं से श्रेष्ठ मानती है। इसी अंक में उर्वशी अपने पुत्र की देखने के लिये जाती है वह वात्सल्य मयी माँ की भाँति कामना करती है कि चन्द्र लक्ष्मी भाती नरेश उसका पुत्र अपने पिता के समान तेजस्वी और पुजा को मुख देने वाला हो। वह मुकुन्दा की आयु की वास्तविक माता स्वीकार करते हुए अपने को लक्ष्मी नारी कहती है क्यों कि भारत शाप के कारण वह पति एवं पुत्र में से एक का प्रेम ही वा सकती थी। मुकुन्दा पुत्र को विमानों की सौपने का विरोध भी करती है। अन्त में उर्वशी यह कहकर कि अब प्रियतम के माह-माह में मेरा तन ही बँधेगा आयु रुपी प्राणी को तू मे तुम्हें सौंपे जा रही हूँ, बनी जाती है।

पंचम अंक में महाराज पुरता के राजप्रासाद का दृश्य है, जहाँ पुरता उर्वशी, महामात्य, राजपति, राजज्योतिषी, सभापति, परचारक और परिचारिकाएँ यथा स्थान बैठे और खड़े हुए हैं। महामात्य राजा भिन्नाग्रस्त होने का कारण पूछता है तब राजा अपने पुत्र प्राप्ति तथा संनाम से सम्बन्धित स्वप्न को सुनाते हैं। इस पर राजज्योतिषी यह भविष्यवाणी करता है कि आज रात तक राजा अपने पुत्र को राज्य सौंपकर प्रकृत्या ग्रहण कर भी नहीं आह्वय में पड़ जाते हैं। उर्वशी भयभीत एवं अतिविचलित होकर भावी आपत्ति के विषय में डट बठाने लगती है तभी मुकुन्दा आयु की चेकर प्रवेश करती है और सारा रहस्य उद्घाटित करती है। उर्वशी अदृश्य हो

जाती है पुरुषा स्वर्ग आक्रमण की योजना बनाते हैं, किन्तु माहमात्र के समझाने तथा अपनी अन्तरात्मा की पुकार पर वे आयु की राज्य देकर आशीनरी को घर लाकर संन्यास छत्रछण कर लेते हैं यही कथा की समाप्ति हो जाती है।

उध्य के पौराणिक आधार की सौन्दर्य-परक भूमिका :-

---

किसी भी युग का काव्य अपने देश और काल की सांस्कृतिक परम्परा और युग परिवेश से नितान्त पृथक् रहकर विकसित नहीं हो सकती। अनेक सांस्कृतिक आध्यात्म जैसे कला, धर्म, दर्शन, पुराण, इतिहास, साहित्य इत्यादि रचनाकार को किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित करते हैं। इनके प्रभावों का समग्र रूप रचनाकार की वैचारिकता का निर्माण करता है। अतः यह गम्य नहीं कि कोई भी सृजक किसी निश्चित वैचारिकता के अभाव में साहित्य सृजना करने में पूर्णतः सफल हो सके। दिन कर की उत्पत्ति भी इसका उपबाद नहीं है। इस पुबन्ध काव्य के उध्य के भी कुछ निश्चित सांस्कृतिक और ऐतिहासिक आधार रहे हैं जिन्हें गृष्टा ने अपनी प्रतिभा और कल्पना शक्ति के आधार पर मौलिक, नवीन तथा कलात्मक संस्पर्श दिये हैं।

वस्तुतः उत्पत्ति का वर्णन-विषय ऐतिहासिक आधार की अपेक्षा पौराणिकता के कूठ में अधिक विकसित हुआ है, किन्तु पौराणिक आख्यानों और चरित्रों की भी एक विशेष ऐतिहासिकता होती है। इस महाभारत की अनेक स्थलों पर इतिहास किता गया है।<sup>1</sup> वस्तुतः इतिहास और पुराण एक दूसरे के पूरक होने के कारण अभिन्नबाधायी के रूप में सर्वत्र उच्च लक्षित हैं - इतिहास पुराणाभ्याम् वेदम् समुप बृहयेत्।<sup>2</sup> अतः उत्पत्ति की क ध्यात प्रेरणा के विवेक-विवेक्षण में हम उध्य की परछाई अनिवार्य है कि कृतिकार ने उसे परम्परागत

---

1-क- इतिहास निम्नम् लङ्गे पुण्य सत्यवती सुतः

महाभारत, आदि पर्व, अध्याय 2, श्लोक 54

ख- इतिहास प्रदीपेन मोहावरणाच्छातिना ।

महाभारत, आदि पर्व, श्लोक 86

2-वही -

60

अर्थों में ही ग्रहण किया हो सकता है। उसमें नवीन चेतना भरने का मार्ग प्रशस्त किया है। वह प्राचीन ज्ञान को कितना अधिक विकसित, सुसाधन और शक्तिशाली तथा मनोवैज्ञानिक बना सका है। इस दृष्टि से सर्वप्रथम कथनक के मूल स्रोत और परम्परा तथा विकास की ओर अवगत है। तत्पश्चात् दिनकर के द्वारा पुनस्त मोक्षिक उद्भावनाओं का मूल्यांकन करना समीचीन है।

पौराणिक कथानकों के आधार पर दिनकर ने प्रमुक्त: तीन प्रबन्ध काव्यों कुशेव, रश्मिरेखी, एवं उर्वशी की रचना की है। अद्येता का विशेष अभिप्राय तीसरी और अन्तिम प्रबन्ध रचना उर्वशी से है।

उर्वशी की कथा के मूल स्रोत वेद, पुराण ब्राह्मण ग्रन्थ तथा महाभारत में दृष्टि गोचर होते हैं। ऋग्वेद के 10 वे मण्डल के 95 वं सूक्त के 19वें मन्त्र में सर्व प्रथम पुरुष और उर्वशी का संक्षिप्त संवाद मिलता है। वहाँ उर्वशी के लिये पुरुषता एक भौग्य पदार्थ मात्र है। इसलिए वह पुरुषता के प्रार्थना और याचना करने पर भी उसे त्याग देती है। पुरुषता से उसका कथन - "नारिणी के साथ मैत्री केमी, उनके हृदय को स्पर्श और भेड़ों की तरह निर्दय और क्रूर होते हैं।" इसका विशिष्ट प्रमाण है।

इसके पश्चात् शतपथ ब्राह्मण में इस कथा के कुछ विस्तृत निर्देश मिलते हैं। इसके अनुसार उर्वशी पुरुषता से निम्नलिखित शर्तें रखती है -<sup>2</sup>

- 1- प्रतिदिन केवल तीन बार ही शक्तिमान किया जाएगा।
- 2- वह बिना उर्वशी की इच्छा के राजा उसके पास न भी सकेगा।
- 3- राजा उर्वशी के समक्ष नग्न अवस्था में नहीं आयेगा।

-----  
1- पुरुषो मा मृधा मा पुण्यसौ मात्या वृकामो अश्विनामरुतः । न च स्त्रेणानि सद्यानि सन्ति साना वृकाणां हृदयान्येता ।

ऋग्वेद संहिता, पृ० ४२४

2- उर्वशी हाप्सरा । पुरुषसमैठं चक्रेत् ह बिन्दु मानोताम त्रिः स्यमाहनी व्यत्मेन दण्डेन हताद काया-----स्त्रीणाद्युदारयति ।

शतपथब्राह्मण काण्ड ११ ३०५, ब्राह्मण । मन्त्र । पृ०



स्थितियाँ ऐसी ही बनती हैं कि पुरुषों किन्हीं कारणों से बनजाये गये हैं  
जहाँ तोड़ देते हैं और उर्वशी वापस स्वर्ग चली जाती है। मन्वेय में शतपथ  
ब्रह्मसंहिता की उर्वशी ब्रह्मवेद की उर्वशी से मृदु, सुन्दर, पवित्र एवं सत्कृत-पतन्या  
{उदात्त} पूर्ण है।<sup>1</sup>

तबन्तर उर्वशी के कथाशत बृहददेवता तथा बृहत्संहिता ग्रन्थों में उपलब्ध  
होते हैं जो शतपथ ब्रह्मसंहिता से काफी मिलते-जुलते हैं। बृहददेवता की विशेषता  
यह है कि इसमें विष्णु के समस्त उर्वशी को तीव्र वेदना होती है और वह स्वर्ग  
स्वर्ग में ही मिल सकती है, कथन द्वारा पुनः मिलन की हार्दिक इच्छा व्यक्त  
करती है। बृहत्संहिता दुर्भाग्य से आज मूल रूप में कुछ उपलब्ध नहीं है, उसके  
तीन रूप संस्कृत रूपान्तर-कथा गरित् सागर, बृहद कथा गजरी एवं बृहद-कथा  
श्लोक में प्रस्तुत साख्यान का व्यापक निरूपण हुआ है। यहाँ उर्वशी के दर्शन  
से पुरुषों प्रेम के लक्ष्मीभूत हो जाता है और श्री हरि की राजानुसार इन्द्र  
पुरुषों को उर्वशी माँप देते हैं। देव-दानव युद्ध के समय स्वर्ग में रम्भा के  
गुरु तक्षक द्वारा पुरुषों को दिये गये उर्वशी त्रिछोह के शाप के कारण  
पुरुषों उर्वशी को छोड़ देता है और अव्यक्त भगवान् की तपस्या द्वारा पुनर्जन्म  
कर उर्वशी को पुनः प्राप्त करके ऐश्वर्य और स्तुति-भोगों को भोगता है।

मत्स्य पुराण में पहलीबार सम्पूर्ण कथा का व्यवस्थित रूप चित्रित  
हुआ है। इस कथाकथन में इन्द्र के मित्र पुरुषों ने केशी देवता द्वारा अपहृत  
और चिन्नेला को मुक्त कराके उर्वशी को प्राप्त किया है। इन्द्र पुरी के  
अमीत्यन्तर नाटक में पुरुषों की उपस्थिति के कारण उर्वशी की अभिन्नान्त  
वृत्ति पर भरतमुनि ने उसे पचपन वर्ष तक पुरुषों के तिरह का अभिषाप दिया  
निरावधि के समाप्ति के बाद पुनः मिलन से पुरुषों द्वारा उर्वशी से तान  
पुनः उत्पन्न हुए।

1-टा० गेखर चन्द्र जैन : राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्य कला, पृ० १११।

वैदार्थीयिका ग्रन्थ में पुरुरवा एवं उत्तरी की प्रणय तथा कृष्ण परितर्कित रूप में मिलती है। इसमें उत्तरी की मित्र और वरुण के यस्तथा कुहमचर्च पानन को भी करने के कारण उत्तरी को उनके द्वारा मृत्युलोक गमन के लिए स्थापित दिखाया गया है। यह कथा-पूर्ववर्ती ग्रन्थों में प्रथम और समिकता से आभासित है।

पुरुरवा और उत्तरी में सम्बन्धित दो सभी ग्रन्थ, वाक्यानाक, कथात्मक और वक्तानात्मक ही अधिक है। उत्तरी का सर्वांगपूर्ण साहित्यिक कलात्मक और नवीन चित्रण तो महाकवि कालिदास के विक्रमोत्तरीयम् नाटक में उपलब्ध होता है। यद्यपि यह नाटक मत्स्य पुराण पर ही आक्षेप है किन्तु कालिदास की कृति [विक्रमोत्तरीयम्] में जो समक, मोन्दरान्तरिकिराग, उदात्तता, त्याग और प्रेम की तत्काल प्रभावोत्पादकता प्रकट हुई है वह अन्तर्गत दुर्लभ है।

हिन्दी साहित्य के अधिकांश विद्वान भारतीय साहित्य के जिन ग्रन्थों का उत्तरी पर प्रभाव स्वीकार करते हैं उनमें सर्वांगपूर्ण भाव्यता कालिदास कृति विक्रमोत्तरीयम् को देते हैं।<sup>1</sup> दिग्दर्शक रूप उत्तरी की मार्मिकता, मार्मिकता वर्णन परम्परा, चरित्रात्मक आदि में विक्रमोत्तरीयम् में पर्याप्त साम्य रक्षी है। दोनों गद्य अंक हैं। अधिकांश गद्य भी वही है। दंत्य बन्धन से उत्तरी की मुक्ति का प्रसंग तथा अंशीनरी की वन्दु आराधना, पुरुरवा का पुत्रेष्टि यज्ञ और अन्त में आयु का राज्याभिषेक आदि घटनाएँ दोनों कृतियों में उद्घाटित की गयी हैं।

दिग्दर्शक ने अपने गीत नाट्य में कालिदास के ग्रन्थ का वाक्यानाक अथवा कलात्मकता का केवल अनुसन्धान नहीं किया, बल्कि अपनी स्पष्ट वैचारिकता धार्मिक परिवर्तन तथा कल्पना शक्ति के साक्षर पर कति ने उत्तरी में अनेक मौलिक तथ्यों का उद्घाटन किया है। दिग्दर्शक ने कालिदास के निदृष्ट को उत्तरी में स्थापन नहीं दिया है। विक्रमोत्तरीयम् की मत्स्यकली की उत्तरी में सुकन्या नाम दिया गया है।

1-श्रीराम चन्द्र जैन : राष्ट्र कति दिग्दर्शक और उनकी काव्य कला, पृ. 114

कामिदास भाति दिमकर ने उत्तरी के अध्यात्म का मुखान्त न करके पुरवा को राज्य त्याग और अंगीनरी को स्थिति और मित्र दिखाया है । रचनाकार के दृष्टि केन्द्र में उत्तरी ही नहीं मुखान्त और अंगीनरी भी रही है ।<sup>1</sup> उत्तरी का देवीय रूप सहज मानवीय रहा है, यह भी दिमकर की मान्यता है । उत्तरी में पुरवा के प्रेम विह्वल रूप की छवि कति ने अधिक मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है । उत्तरी की अंगीनरी तिकुमोर्त्तरीयम् की अंगीनरी की तरह स्पष्ट होकर नहीं जाती है बल्कि कव्याभास सहन करने वाली त्याग पूर्ण नारी के रूप में प्रस्तुत होती है । तिकुमोर्त्तरीयम् के तृतीय अंक की तुलना दिमकर ने प्रथम तथा द्वितीय अंक में तथा भास्कराज की तृतीय अंक की तुलना कतुर्थ और पंचम अंक में समाविष्ट की है ।

पंचम अंक में कामिदास की भाति में ही उत्तरी का स्वरूप में परिवर्तन चित्रित है और न राजा का प्रेम में पागल रूप ही अंकित है हाँ उत्तरी के मुक्त होने पर पुरवा की चेदना गर्व और रोष की उल्लिखों का आकाशक्य मिया गया है । प्रेम मित्र के प्रेम में कामिदास संगमनीयमणि के उत्प्रेष द्वारा आयु और पुरवा का मित्र कराते है तो दिमकर ने स्वप्न का मृतन करके पुर और आयु को मित्राया है, साथ ही भागति के स्थान पर मुखान्त उसे लेकर जाती है कामिदास अन्त में उत्तरी को शाप से मुक्ति दिमाकर राजा के साथ रहने देते हैं जब दिमकर पुत्र दर्शन के बाद विह्वल उत्तरी को पुनः स्वर्ग भेज देते हैं । कामिदास ने अप्सराओं में तिरहकणी किता में स्वयं को अदृश्य रहने की जो शक्ति दिखाई है, दिमकर ने उसे अनौक्तिक तत्वों की उत्तरी में स्थान नहीं दिया। दिमकर ने कदाचित् जाम बुझकर रम्भा की उत्तरी के पुरवा तिरहक आकर्षण से पूर्णतः अनभिज्ञ प्रदर्शित किया है । जब कि तिकुमोर्त्तरीयम् में वह उत्तरी की अभिन्न हृदय सहचरी चित्रित की गयी है । दिमकर ने आयु की नोटने का तो कोई विशेष कारण नहीं लिखा जैसा कि कामिदास कहते हैं कि तबोत्तम के नियमों को भंग करते हुए उत्तरी की संगमनीयमणि के द्वार की चौक में लेकर उसके गीष्ठ की आयु ने हत्या कर दी थी । कामिदास के पुरवा उत्तरी से अपने पार्थक्य की भाग्य का दीप

मानते हैं ; हुए बैठ रहते हैं जो कि दिनकर के पुरवा उत्तरी के निरी स्वर्ग पर आक्रमण करने की योजना बनाते हैं ।

वस्तुतः दोनों प्रतियों में कथावस्तु विषयक पर्याप्त साम्य होने पर भी उनके प्रति पाद्य में इतना अधिक अन्तर है कि त्रिकुम्भीकीयस्य को भी उत्तरी की रचना के लिये पूरी तरह उत्तरदायी नहीं माना जा सकता । कालिदास के उत्तरी और पुरवा कामाध्यात्म अथवा उन्हें रुधिर की आग के विषय में दिनकर के पुरवा और उत्तरी के समान जम्बी ताड़ प्रतियोगिता तो क्या लोटी भी नर्चा करते भी नहीं मिलते ।<sup>1</sup>

अब प्रश्न उठता है कि क्या दिनकर ने अरविन्द या रवीन्दु नाथ टोगौर की उत्तरी नाम की कृतियों से प्रेरणा मिली है। इस विषय में स्वतः दिनकर का कथन दृष्टिपूर्ण है - 'हैं जहां तक उत्तरी की मूल कल्पना का प्रश्न है वह रवीन्दु की उत्तरी से उसनी भी प्रभावित नहीं है जितना प्रभाव रवीन्दु की उत्तरी पर रिविन्दुर्न का आका जा सकता है । -----

अरविन्द के उत्तरी छगल काव्य में उत्तरी जीवन ज्योति के रूप में निश्चित की गयी है । जिसके त्रिपुष्प हो जाने पर पुरवा निदिपत साधक की भाँति हिमालय के बनों में घने जाते हैं और अपने निःशेष की खोज करते हैं । मेरी कल्पना की उत्तरी देवी और मायवी का समान्वित रूप है, जो शरीर और आत्मा को प्रेरित करती है ----- अरविन्द ने उत्तरी की रहस्य वाली भावना में लपेट दिया है । वह शायद मनुष्य के अध्यात्म का प्रतीक है जिसके मथान में मनुष्य ससार के तैलियों का त्याग कर देता है । मैंने पुरवा का जा सम्बास दिखाया है, उसके भीतर भी जमा कोई सत्त्व है ।<sup>2</sup>

डा० राजपाल शर्मा की उत्तरी की कथावस्तु के मूलश्रोत से सम्बन्धित धारणा से परिचित होना भी पुस्तक मंदिर में अवहित है । उसके अनुसार

1-डा० राजपाल शर्मा : युग जैता दिनकर और उनकी उत्तरी, पृ० 71

2-संपा० गोपाल कृष्ण कोल : दिमक र दृष्टि और दृष्टि, पृ० 29-30

उर्वशी कार ने कथावस्तु की स्थूल रूप रेखा महा कवि कालिदास के विक्रमादित्यगीयसु नाटक के अनुरूप रखी है किन्तु उसका प्रतिपादकालिदास के प्रतिपाद से सर्वथा विभन्न है किन्तु उसके चिन्तन पर ही ००००००० और बट्टेण्ड रस की वैवाहिक जीवन की मान्यता एवं असफलता तथा प्रेमी प्रेमिकाओं के काम - सम्बन्धी की सुखदुःख भूतभीतरता सम्बन्धी धारणाओं का पर्याप्त गुणांक है ।<sup>1</sup>

इसके अतिरिक्त दिनकर ने भारतीय ग्रन्थ काम सूत्र शिवपुराण, गीता आदि से प्रेरणा ग्रहण करते हुए उनकी मान्यताओं को उर्वशी में निहित कर दिया है । यह मान्यता एक सीमा तक उपयुक्त प्रतीत होती है क्योंकि उर्वशी के अनेक स्थूलवस्तु दोनो कृतियों - मेरिज एण्ड गोरन म, तीमन इन सब के वर्णनों से पर्याप्त साम्य रखते हैं ।<sup>2</sup>

आचार्य पद्मश्री ने यशोग काम में स्त्री को जिस चातुर्य को अपनाने का परामर्श दिया है उसे दिनकर ने प्रायः यथावत रूप में निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया है -

"क्षण-क्षण प्रकटे, दूरे क्षिप्त फिर-फिर जो चुम्बन लेकर  
ने समेट जो निज को प्रिय के क्षुब्ध अंक में देकर ;  
जो सपने के सदृश बाह में उली-उली जाती हो,  
प्रियतम को रख सके निमग्नित जो अल्पित के रस में,  
और लहर में लोट तिमिर में लूब-लूब जाती हो,  
पुरुष बड़े सुख से रहता है उस प्रमदा के लस में ।"<sup>3</sup>

1-डा० राजपाल शर्मा: युग चैता दिनकर और उनकी उर्वशी, पृ० 15-16

2-वही

3-दिनकर : उर्वशी [द्वितीय अंक] , पृ० 33-34

"उर्खी की युग साफ़ेयता तथा मौलिक व नवीन उद्भावनाएँ":-

दिनकर ने पुरुषा तथा उर्खी के परम्परागत आख्यान में जो परिवर्तन और मौलिक प्रयोगों की अवधारणाएँ की हैं उनके अवचित्य और अनवचित्य का विश्लेषण करना भी अनिवार्य है। इस दृष्टि से परम्परागत प्रयोगों के परित्याग अथवा उनमें किञ्चित् परिवर्तन के साथ-साथ रचनाकार की सर्वथा नवीन उद्भावनाओं पर दृष्टिपात करना अधिक समीचीन होगा। पुरुषा और उर्खी से सम्बन्धित अनेक परम्परागत तथ्य ऐसे हैं जिन्हें कवि ने उर्खी में स्थान नहीं दिया है। वह पद्य ब्राह्मण की तीन शर्तें -1- तुम दिन में तीन बार मेरा आलिंगन करोगे। 2- मेरी इच्छा के विपरीत स्थान में प्रवृत्त नहीं होगे। 3- मैं तुम्हें कभी नग्न न देख पाऊँ। दिनकर की उर्खी में नहीं मिलती क्योंकि मातृप्रेन्द्रियस्तर की कामना से ही स्वर्ग हाँकर भू पर अवतरित होने वाली उर्खी द्वारा ऐसी शर्तें रखना अनुचित लगता है। डा० राजपाल शर्मा के अनुसार दिनकर के अवचेतन में विद्यमान प्रेम के प्रेन्द्रियस्तर चित्रण की कामना और पुरुषा तथा उर्खी द्वारा उसके बहु-विधि मैत्र की दृष्टि से उर्खी द्वारा ये शर्तें रखवाना परमावश्यक था वहीं वह पुरुषा की सौलह वर्ष तक अपने प्रेम-पाश में आबद्ध रख सकती थी नहीं तो उसका आशीनरी से अधिक महत्त्व नहीं। एक और आशीनरी के मन में उर्खी के गणिका जैसे गुणों की अपमाने की लपेटाहट और दूसरी और कामोपभोग के निषेध गणिका [उर्खी] की गृहिणी से अधिक सुलभ चित्रित करना कहाँ तक न्याय संगत है।

गन्धर्वों द्वारा उर्खी को वापिस बुलाने का संकेत पकड़ाने रहते हुए उसके मेक-शावकों को घुराना, नग्न पुरुषा द्वारा उनका पीछा करना तथा गन्धर्वों द्वारा किसी गरीब पुकाश में उर्खी का पुरुषा को नग्नदेखाना, इस दृश्य की कालिदास के समान दिनकर ने अपनी कृति में स्थान नहीं दिया

1-डा० राजपाल शर्मा : यही चेता दिनकर और उनकी उर्खी, पृ० 141

जो इस लिए उचित है कि समस्त पर हम अद्भुत दृश्य का दिखाना कुत्ति पूर्णथा । महस्य पुराण के आधार पर कालिदास ने क्षुब्ध अंक में उत्तरी की पुरुषा से दृष्ट होकर कुमार बन में प्रवेश कराकर जला में उसकी परिणति , पुरुषा का विनाश, संगमनीयमयी द्वारा दोनों का पुनः मिलन इस घटनाक्रम के विवरण से ४० सर्ग के अनुसार -कथावस्तु की मार्मिकता दीर्घ हुई है इसमें भी अधिक क्षति यह हुई है कि दिनकर विविध घटनाओं में काव्य व्यवधान नहीं दिखा सके । आयु के जन्म की सूचना ने १६वर्ष बाद एक साथ उसके आगमन की सूचना मिलती है । बाद के सर्गों में उत्तरी पुरुषा की भांग लिप्सा, काम सर्ग व राज्य कार्य की जलक नहीं दिखाई गई । कुल मिलाकर कालिदास का घटना संयोजन दिनकर की अपेक्षा अधिक स्पष्ट सुसंगत और ग्राह्य माना जा सकता है ।

श्री मद भागवत के उस प्रसंग का त्याग जहां से उत्तरी के साथ विस्तारी गये दिनों को अपने जीवन का अमूल्य भाग नष्ट कहते हैं या अंगरेज का यह संदर्भ -जहां उत्तरी नारियों की भर्त्सना करती है , कृति ने नहीं दी । शीक भी है क्यों कि ऐसा करना उत्तरी के मूल प्रतिपाद्य के सर्वथा प्रतिकूल था । कालिदास की भांति उन्हे पुनः आयु की सर्ग भी उचित मानी जा सकती है क्यों कि पुराणों के समान तःसा आठ पुत्रों का जन्म निष्काम काम तृप्ति वाली उत्तरी द्वारा सम्भव नहीं है । हाँ इतनी लम्बी अवधि में साथ - साथ रहकर भी उत्तरी औरशरीनरी का एक बार भी वातावरण न कराना अवश्य कुल घटका है । उत्तरी का पुरुषा और उत्तरी की काम समाधि का वर्णन करते-करते रस भी ऐसा समाधिस्त हो गयाहै कि उसे औरशरीनरी का ध्यान ही नहीं रहता । उसकी योग मृदा लभी भी हो पाती है जब रस मध से पुरुषा और उत्तरी दोनों अस्वरूपान हो जाते हैं।

श्लेष में दिनकर द्वारा परम्परा प्रत्यक्ष आश्रय में की गयी सूत्र उद्भावनाएँ उनके प्रतिपाद्य की दृष्टि में अधिक सुसंगत बनपट्टी है । किन्तु जिन तथ्यों का उन्होंने परिवर्तित नियोजन यथा सर्वथा त्याग किया है उसने कृति की प्रभावान्विति में अभिभूति ही की है ऐसा नहीं माना जा सकता ।

दिनकर ने परम्परागत तथ्यों में व्यतिक्रम ही किया है। उर्वशी के दैत्य द्वारा अपहरण और पुरुरवा द्वारा उसकी मुक्ति का विस्तृत वर्णन न करके मुख्य कथा के रूप में महजान्या के मुख से वर्णित कराया है। इस परिवर्तन का कोई औचित्य नहीं क्योंकि कि दर्शक इस दृश्य को देखने से बर्षित रह जाते हैं। इतने मार्मिक और छटना क्रम को मुख्य बनाकर कवि ने उर्वशी के नाट्यत्व की तो पर्याप्त क्षति की ही है। उसके सभास में आगे की कुछ छनाएँ एवमासासाद लगने लगती हैं जिन्हें आचार्य शुक्ल के शब्दों में सुर की गीतियों के समान बोलने की बेगार कह सकते हैं। दिनकर ने तिरस्कारणी विधा की शक्ति को उल्लेख नहीं किया है जो इस दृष्टि से उचित है कि अलौकिक शक्तियों का राज के वैज्ञानिक युग में कम नियोजन ही सही है। भक्त द्वारा दिये गये शाप का कालिदास की भाँति दिनकर ने विस्तृत परिचय न देकर उर्वशी के माध्यम से उसका प्रत्यक्ष मात्र किया है। डा० राजपाल शर्मा इसे सुग्राह्य और प्रभावक (Convincing) नहीं मानते उनका कहना है - "सुकन्या ऐसी अन्तर्द्विमीनी नहीं है जो नारियों जैसा कौतूहल भाव बिनाकर उर्वशी से शाप का कारण न पूछे बल्कि द्विष्ट दृष्टि से सब कुछ भाँप कर भारत को गालियाँ देने लगती हो।"

वास्तव में भारत मुनि दुर्लभा तो है नहीं जिनका सभी को पता ही पश्चिम ओर में आयु का माता पिता से दिनकर द्वारा मिलन कराना और संगमनीय यज्ञ की छटना को न लेना डा० शर्मा को अधिक सुग्राह्य और ग्राह्य लगा है।<sup>2</sup> क्योंकि कि इसमें असम्भव छनाएँ नहीं हैं। पुरुरवा का स्वप्न दर्शन यशोतिषी की संन्यास सम्बन्धी भविष्य बाणी और सभी महर्षि धर्मन द्वारा भेजी गयी सुकन्या के माधव आयु का प्रवेश आदि में देवीय प्रेरणाका हाथ है। अतः दिनकर द्वारा विवर्धित प्रमाण की अधिक रस्य

1- "महाकुर कर्मा कौतूहल वै भारत बड़े दारुण है।"

दिनकर : उर्वशी चतुर्थस्कंध, पृ० 115

2- डा० राजपाल शर्मा : युग चेतादिनकर और उनकी उर्वशी, पृ० 140



और छहछठे स्थापतिक माना जा सकता है ।

उर्वशी की कु उद्भावनाएँ ऐसी ५ हैं जो सर्वथा नवीन और मौलिक हैं जैसे रम्भा, सहजन्मा मैत्रिका द्वारा वातावाप के माध्यम से कवि का आधुनिकताओं की आलोचना करना भ्रमणस्व को ऐन्द्रिय सुष्टि में स्थिर से बढ़कर विविध करना और नारी के मादृत्त को परागमणित करने अंकन करना इसका गूढ़ प्रमाण है द्वितीय अंक में आशीनरी, मदमिका और निपुणका द्वारा पुरुष मनोविधान का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत कराना और तृतीय अंक में पुरता और उर्वशी द्वारा प्रस्तुत प्रेम और ऐन्द्रिय सुष्टि का लोकोत्तर रूप प्रतिपादित करना कवि की नूतन उद्भावना है चतुर्थ अंक में महिष अयतन द्वारा नारी को मिट्टि का पुत्तिका बनाना और पंचम अंक में मुकुन्दा और आशीनरी के वातावाप से पत्नी के महीन धर्म और नारी महत्ता का बखाना भी कवि की निज कल्पना का प्रतिफल माना जा सकता है साथ ही पुरता द्वारा स्वर्ग पर आक्रमण करने की तैयारी उनके मन्थन ग्रहण करने और उससे पहले अपने पुत्र आयु के राक्षसरोहण को राज्य प्राण में रोहित नूतन वटपादक के रूप में स्वप्न में देखना कवि की कल्पना की निजी सुष्टियाँ हैं डॉ० शर्मा के मतानुसार "सभी मौलिक सुलझों में से अन्तिम दो के अन्तर्गत शेष प्रयोग दिनकर के प्रती पाद्य में धनिष्ठसम रूप में संशुद्धि है । और कृति की प्रभावान्विति के अभिवर्धन में सहायक ही क्यों कि कवि ने नरनारी के शाश्वत प्रेम सम्बन्ध पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है अतः नरनारी के पारस्परिक आकर्षण, उनकी मनोवृत्ति प्रमोदप्रसन्न, यौन आकर्षण आदि में मूलतः सम्बन्धित प्रसंगों की अवतारणाएँ ही कवि को अभीष्ट थी । अप्सराओं के प्रथम गान में ही जिसमें वे आलिंगन चुम्बन का उल्लेख करती हैं -

"मही मुष्ट मिश्रित गगन है

आलिंगन में मीन, मगन है ,

।

।

।

मुदित बाद की ललके चुम्पों

तारों की गलियों में छपी ।"

में यह एक संकेत मिल जाता है कि जागे के घटनाक्रम का प्रसार किस दिशा की ओर सम्मुख रहेगा ।

पुरुषा के स्वप्न प्रसंग की मौलिक उद्भावना जिसमें जागामी घटनाओं का पूर्व संकेत मिलता है घटना नियोजन का एककृत नमूना है । इसके साथ स्वप्न कृतान्त सुनाते समय उत्पत्ती जिन मनःस्थितियों में निहित की गई है वह कृति की नाटकीयता में अभिवृद्धि करते हैं । पुरुषा द्वारा स्वप्न पर आक्रमण करने के मौलिक प्रसंग से दो प्रयोजन सिद्ध हुए हैं -

1-पहला तो महामात्य द्वारा पुरुष को आक्रमण की हानियों, क्षमों की सहायता से विजयी होकर भी इनकी संगति में मानवता के पतन की आशंका के जो तर्क <sup>पेश</sup> किये हैं उनमें आधुनिक काल के राजनीतिक परिदृश की ध्वनि मौजूद है । इस का दूसरा प्रयोजन पुरुषा के तेजस्वी रूप की शक्ति प्रस्तुत करना है । द्वितीय अंक में निपुली का द्वारा किये गये पुरुषा के शौर्य और प्रसार वर्णन पर पाठक को महज निश्चय नहीं होता । तृतीय अंक में पुरुषा स्वयं जब आत्मश्लाघा करते हुए कहते हैं -

“सामने टिकी नहीं बनराज, पर्वत होकर है,

कापता है कूखी मारे समय का दयाल,

मेरी बांह में भारत, गरुण, गजराज का बल है ।

उत्पत्ती आने समय का सूर्य हूँ मैं,

बादलों के क्षीय पर स्यान्दन बनाता हूँ ।”

उनके इस गप्पीली पत्र पर पाठक की हँसी आ जाती है । दिनकर ने पुरुषा की उत्पत्ती से बिलुप्ति के बाद प्रवृजित होते दिखाया है और पुराण तथा कालिदास के आधार को नहीं माना है । यह मौलिक परिवर्तन

इसलिये उचित है कि इसके द्वारा नै कथानक में औलोचिक सत्त्वों की भर्त्सी हो बघाना चाहते हैं किन्तु कवि ने दोनों की काम तृप्ति को बार बार निराकार अदृश्य परम सत्ता की पूजाराधना कहते निमित्त किया है। उस दृष्टि से यह परिवर्तन गुण को गौर कर रहा हुआ दिखाई देता है वास्तव में यह आभास ऊपरी है। कवि कामाराधना की हरवराधना और परम पुरुषार्थ नहीं मानता।<sup>1</sup> बल्कि इस दिशा में उसके विचार अस्पष्ट में हैं। कुछ भी सीक्स्तान की जाय अन्तिम पुमंग की कल्पना का औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता।

पुरुष की परिणीता पत्नी जीवित है। फिर भी प्रेमी के वियोग में कमण्डल लेकर उसे भाग खड़े होते हैं जैसे उनका पीया भिरे {वर्षा} कर रही हो। पुरुष की यह तिलमिलाहर न तो उनके पुत्र परिवार, सम्भासदों पर लापित पुभाव ाल मुकी होगी और न दर्शक या पाठकों पर ही स्वस्थ पुभाव डालती है पंचम अंक में औशीनरी और मुकुन्दा के मध्य लम्बे वातलाप की मुष्टि प्रतिपाद की दृष्टि से उल्लेख है। क्यों कि इसमें कवि बिखरे हुए गृहस्थ जीवन के संगठन की बात करता है। लेकिन विगत धटनाओं के परिप्रेक्ष्य में यह घटना धोपी गई सी प्रतीत होती है। क्यों कि द्वितीय अंक में कवि तैयारी औशीनरी की उद्गुली प्रति दिशाकर उसे सर्वथा भुला देता है और सोनह वर्ष तक उसके बारे में एक शब्द भी नहीं कहता है। पुरुष के मर्यामी होने पर औशीनरी से यह और कहना देता है कि -

“महाराज कितने उदार

कितने मृदु भाव प्रकण मे।

मुझ लभागिनी को उनने ह

कितना सम्मान दिया था।”<sup>2</sup>

1-दिनकर : उर्वशी का प्रतिपाद नामक लेख में, पृ० 10

2-दिनकर : उर्वशी {पंचम अंक} , पृ० 149

ऐसा मायूम पड़ता है कि ओशीनरी स्वप्न में बहस रहा रही है अथवा यह उसका मानसिक विक्षेप है या फिर उसकी विवशता या नाचारी । भावात्मक मौन्दर्य-ज्ञाना - इस के परिप्रेक्ष्य में :-

=====

जहाँ तक उर्वशी के अंगी रस का पुराने आचार्य विद्वानाथ ने अंगी रस उसे माना है जिसे अन्य रसों से पहले प्रस्तुत किया गया हो और जिसकी कृति में बार-बार आनुक्ति की गयी हो ।<sup>1</sup> किन्तु डा० नगेन्द्र इस निष्कर्ष को प्रामाणिक मानते हुए भी पर्याप्त नहीं मानते । उनकी दृष्टि में अंगी रस के अन्य दो गुण ये हैं कि उसकी प्रबन्ध की मुख्य पात्र अर्थात् नायक या नायिका की मूल वृत्ति से संगति हो ।<sup>2</sup>

वस्तुतः उर्वशी में हास्य रस के अतिरिक्त ग्रास, कभी रसों की अभिव्यक्ति हुई है । कथुका के अनुसार रमभा और महजन्मा द्वारा प्रस्तुत नारी निन्दा में वीभत्स रस का, चिन्मैत्रा द्वारा वर्णित प्रयोग में पुरुषता और उर्वशी के प्रथम दर्शन जन्म विपुलम्भ क्षार का, तृतीय चैत्र में मयोग क्षार का पहले उर्वशी और तदनन्तर पुरुषता और ओशीनरी की आयु सम्बन्धी उक्तियों में वात्सल्य रस का, पुरुषता के स्वप्न कृतान्त में अद्भुत रस का, स्वप्न कृतान्त के बाद उर्वशी की मनीदशा में भ्रान्त रस का, पुरुषता की स्वर्ग आक्रमण सम्बन्धी उक्तियों में वीर रस का और रादु का, उनके प्रगृहित होने से पूर्व कथनों में शान्त रस का, ओशीनरी की उक्तियों में कृष्ण रस का तथा कृति के अन्त में शान्त रस का परिणाम व्यञ्जना दत्तनि { हुआ है । कभी रसों में क्षार रस की बहुव्यापित इष्ट दिशाई देती है और शान्त रस स्पष्टतः इसकी ओढ़ा रस व्याप्त प्रतीत

1-प्रबन्धेषु प्रथमतः प्रस्तुत मन पुनः पुनः सम्बन्धीमानत्वेन स्थायी योरसः

विद्वानाथ : साहित्य दर्पण 6/317

2-डा० नगेन्द्र : रस सिद्धान्त, पृ० 295-86

होता है। वीर रस की प्रस्तुत कृति में प्रधानता तो नहीं मानी जा सकती। पंचम अंक में पुरुषता की उक्तियाँ में भी वीर रस के स्थान पर रौद्र रस की ही अधिक ध्वजना हुई है। अतः विवाद रस विन्दु पर है कि शृंगार और शान्त रस मैसैउर्वशी का अंगी रस किये माना जाए।

शृंगार रस को अंगी रस सिद्ध करने के निमित्त निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं -

क-कृति का आरम्भ ही शृंगारिक वातावरण में हुआ है। अप्सराओं के वातावरण में मुख्य विषय रति भावना की सन्तुष्टि या काम वर्ता ही है।

ख-चित्रशेखर के उर्वशी और पुरुषता के त्रिगुण वर्णन में मरण दशा के अतिरिक्त सभी चित्र दशाएँ वर्णित हैं। ओशीनरी के प्रसंग भी प्रवास जन्य विप्रलम्भ है जब कि तृतीय अंक में दोनों का निष्पन्न मेलोप वर्णन है जिसकी चतुर्थरत्न में उर्वशी के स्मृति कथन द्वारा पुनरावृत्ति कराई है। इसी में मुकुन्द्या और लवण का मेलोप शृंगार वर्णित है। पंचम अंक में रति भाव ने उद्दीप्त नारी का शृंगार वर्णन किया है। शृंगार रस की इस बहुत आवृत्ति और व्याप्ति के कारण कविान आलोचकों ने शृंगार को ही इसका {उर्वशी} अंगी रस माना है।

ग-नायिका प्रधान इस कृति में नायिका उर्वशी की मूल प्रवृत्ति या काममई है अतः अंगीरस शृंगार भी माना जा सकता है।

इन उपर्युक्त सभी तर्कों के विरुद्ध कतिपय

आक्षेप इस प्रकार हैं -

शृंगार रस का इस कृति में सर्वप्रथम अभिव्यक्ति नहीं माना जा सकता है। प्राकृतिक सृष्टि का आरम्भिक रति युक्त वर्णन भाव की कौटिल्य तक पहुँचा है, इस की स्थिति तक नहीं। हाँ यहाँ पर वीररस रस की

1-क-डा० विमल कुमार जैन: महाकवि दिनकर उर्वशी तथा अन्य कृतियाँ

पृ० 289-300

ख-डा० मेहर चन्द्र जैन : राष्ट्र कवि दिनकर और उनकी काव्यकला

पृ० 147-150

सृष्टि अत्रय हुई है।

उफ ऐसी धूमिल भूमि ? तब तो उर्वशी हमारी, सब-कुछ  
ही, कर रही नरक में बर्षों की सेवारी। तुम भी रम्ये । निर्धन क्या  
बर्षों बसाती है। अब तो मुझे यही रोर-र की पकूती दिखतायी है।<sup>2</sup>

यसुध और नारी के विषय में अतः यह उद्गार है कुसुमा के सुख  
हे और रसभाव की स्थिति में है। उर्वशी के अधिष्ठाता मंगल जर्मन भी इसी  
कीट में आते हैं। इसी प्रकार पुरुरवा और उर्वशी के विचित्रता द्वारा उर्वशी  
विषीन मंगल और निपुणिका द्वारा कथित सम्भोग मंगल के चित्र प्रेक्षणी  
के सुख में रति भाव जागृत कर उसे रस दशा तक पहुँचा करे, इसी ७१०-  
रम्य की कहे हैं क्योंकि नमक-नायिका की सम पारम्परिक विरह त कृपित या  
दरिद्र-धर्मन आदि सुखों में मन नहीं देखते बल्कि उसी प्रकार उनका विवरण  
सुनते हैं जैसे कारिगारों प्रा तः सम्पत्तियों के निरव कालीन केति-विज्ञान की  
अनकृति कर दिया करती हैं। सुतीय लंब के उर्वशी-पुरुरवा संवाद से भी  
पूर्णतः मंगल रस अभिव्यक्त नहीं होता। कारण यह है कि उर्वशी और  
पुरुरवा दोनों कीर्ण अथवा विषीन के लगी में पूर्णतः अनुकूल हस्त और समान  
भाव सेव्यमित न होकर निर्धन, उन्मत्त और उदासीन रहने का प्रयास करती हैं

जहाँ किसी भी स्मार्त भाव की जागम और अज्ञान में असमानता ही अभाव  
उनमें से एक में पूर्ण अभाव ही वहाँ सत्त्विय दृष्टि से राजभाव ही माना जायेगा ।

कहना न होगा कि उर्वशी और पुरुरवा का रतिप्रमोद अथवा श्रौद्ध  
समान नहीं है। पुरुरवा उससे विरक्त और उदासीन से है, जब कि उर्वशी  
की रतिप्रसन्नता अत्यन्त तीव्र है। ऐसा कि पुरुरवा कहते हैं — उन्हें उर्वशी  
के विसर्ग की मात्र इती उद्देश्य से जरत है कि वे उसके माध्यम से उस  
उर्वी लोक तक जाना चाहते हैं जहाँ ऐंद्रिय-भोग हीन व कुछ प्रतीत होने  
लगते हैं—

“ उपर जी हयुतिमान, मनीमय जीवन बसक रहा है ।  
उसे प्राप्त हम कर सकते हैं तन के अतिश्रम से” ।<sup>2</sup>

ब्रह्म ही निरुद्ध- निष्काम, निर्विघ्न ऐंद्रिय भोगी का कथान करने वाली  
उर्वशी भी अन्ततः अपने विषय में यह रहस्योद्घाटन करती है —

“ मैं अदृष्ट कल्पन, मुझे तुम देह मान बैठे हो,  
मैं अदृश्य तुम दृश्य देखकर मुझकी समझ रहे हो ।  
सगर की अज्ञानता, मानसिक तन्मया नारायण की।<sup>3</sup>

पुरुरवा उर्वशी के विषय में जो यह धारणा व्यक्तकरते हैं —

“ किया नहीं देख्य बिभार भी इस धर्म-व्रतन में,  
देह ग्रहण करने पर भी तुम नहीं अदृष्ट विभासी।<sup>4</sup>

- 
- 1- पुरुरविक प्रभोदस्य रतिवर्धनस्य न्यूनताया व्यतिरेके वा परि-पूर्तरभावस्य  
रसभाव स्वमिति- ( हिन्दी साहित्य कोश पृ० 382  
2- दिग्दर्शक : उर्वशी ( दुतीय अंक) पृ० 60  
3- वही : वही - वही पृ० 89  
4- वही : वही - वही पृ० 90

इससे अब तक केवल रस का जो थोड़ा बहुत अन्तर्भव महसूस करना था वह सबसु ठीकी ठीक जाता है और अद्भुत रस की प्रतीति होने लगती है। इस प्रकार सुकन्या की देखकर ऊपर आगु व्यक्त की अपने शरीररंगी में कीपसी फूटती दीखना और अपने बालों की उम्र के पुष्प की ओरों में कामाग्नि देखकर सुकन्या का भीरवी की भाँति सुग-सुगाना अपनी प्रसंगा सुन्दर कल्पना लोकमें विवरण करने लगना अर्द्ध में कुछ मनी वैज्ञानिक लय हो सकता है। किन्तु शास्त्रीय दृष्टि में यह रसाभास की ही श्रुति मानी जा सकती है। साथ ही पुरुरवा स्वयं स्पष्ट करते हैं- कि सबबाल कास में उनका मन लदेय विभक्त रहा है और उनकी अन्तर्मन में अन्तर्लसता यह संदेश देती रही है कि देखिक भोग और विराम विज्ञाप के तमाम सम्पन्न किया है—

“ सुभास्य विराम-विज्ञाप का सुभा मोह मया का,  
इन देखिक सिद्धि-कीर्तियों के कवनावरण में,  
भीतर ही भीतर विभक्त में कितना ललित रहा हूँ।<sup>1</sup>

स्पष्ट है 'उर्वशी' में केवल रस का किञ्चिद परिचय नहीं मिलता है। उसकी अधिकतर केवल कर्म भावभास अथवा रसाभास की कीट तक ही पहुँचे हैं। उर्वशी में मूल या प्रमुख केवल रस होने पर भी उसकी अनुभूति में रसाभास के कारण शान्त रस की भी प्रतीति होती है।<sup>2</sup>

अतः अंगिरस नायक अथवा नायिका प्रधान भी है। 'उर्वशी' की एक नायिका प्रधान काव्य मन्त्र तो उसकी काममयी मनोवृत्ति के अनुकूल वृत्ति में केवल रस का निर्वाह कुछ भटकता है। प्रथम अंक के पूर्वार्द्ध में ही वह अन्तर्ध्यान हो जाती है जिसके बाद पुरुरवा ही घटना सूत्र के प्रवक्तव्य रहते हैं। वृत्ति के पूर्व अंकी में भी घटना या कर्मों में पुरुरवा का उर्वशी में कम योगदान नहीं।

1- दिनकर : उर्वशी ( प्रथम अंक ) पृ० 145

2- डॉ० रामपाल शर्मा : युगवेत्ता दिनकर और उर्वशी पृ० 266



अतः विवेच्य कृति नायक प्रधान सिद्ध मानी जा सकती है और जंगीरस भी उसी की मनीवृत्ति के अनुकूल निश्चित करना चाहिये ।

पूरी कृति का सारभूत प्रभाव पाठक के ऊपर निवृत्ति या निर्झर प्रधान ही रहता है अतः उर्वशी का जंगी रस एक सीमा तक शान्ति रस भी माना जा सकता है। त्रयिता अगर और शान्ति में से किसी भी रस की जंगी रूप में प्राधान्य देने अथवा प्रतिपादय और नायक की मनीवृत्ति के पूर्णतः अनुकूल बनाने के प्रति असाधारण सा रहा है। इसी अतिरिक्त काव्य रूप की दृष्टि से ' उर्वशी ' संवाद प्रधान प्रबन्ध काव्य अथवा गीतिमादय है अतः उसका जंगीरस शान्ति रस होना सम्भव है।<sup>1</sup>

शान्ति रस जिसे अभिनव गुप्त ने रस-राज घोषित करते हुए यह मत व्यक्त किया है - कि सभी रसों का आश्रय प्रायः शान्ति रस के रूप में होता है। अपने स्वल्प विस्तार के कारण उसका स्पर्श भाव भी काफी विस्फुरक रहा है। शान्ति रस के सम्बन्ध में अभिनव गुप्त की मान्यताएँ इस प्रकार हैं -

- क- शान्ति रस का स्थायी भाव सम है ।
- ख- दारिद्र्य आदि कारणों से व्युत्पन्न निर्झर के विपरीत तत्त्व ज्ञान से उद्वुद्ध निर्झर शान्ति रस का स्थायीभाव होता है।
- ग- अन्य रसों के स्पर्श भावों में से ही कीर्त स्वरूप अपने पूर्व रूप से निम्न रूप में अर्थात् अधस्तम बर्तौ आदि से घोषित होकर शान्ति रस का जन्म होता है।<sup>2</sup>

रति आदि स्थायी भाव विभिन्न रूप में नहीं अपितु समन्वित रूप में पानक रस के समान शान्ति रस के स्थायी होती है।<sup>3</sup> अभिनव गुप्त ने इसका खंडन करते हुए यह स्थापना की कि तत्त्व ज्ञान या अहिंसाज्ञान या अहिंसा ही शान्ति

1- अगर और शान्तात्मामेकीर्तगी रस इध्यते ।

अंगानि सर्वत्रापि रसः सर्वे नाटक लक्ष्यः

विरज्ज्वाथ : साहित्य दर्पण 6/317

2- हिन्दी अभिनव भारती : पृष्ठ क्रम- 620, 622, 623

3- हिन्दी साहित्य वीरा ( भाग-1 ) पृष्ठ 763

रस का स्थायी भाव है। या यी कहें कि निर्रिक्त प्रेरित तत्त्व-ज्ञान शक्ति रस का स्थायी भाव है वृत्ति 'रस' स्थायी भाव न होकर निर्रिक्त प्रेरित तत्त्व-ज्ञान के कारण होने: होने: विवक्षित हुई उस मनीषणा का नाम है जिसमें भीता की दशां वैसी ही हो जाती है जैसे शक्ति रस की बख्श के समय। अतः अभिनव गुप्त द्वारा शक्ति और रस की पर्याय मानना समीचीन है।

'उर्वशी' में व्यंजित शक्ति रस का भी यही स्वरूप वर्णित होता है। पुरावा के मन में ऐन्द्रिय भीती के प्रति कुछ विरक्ति या निर्रिक्त भाव तो है किन्तु तत्त्व ज्ञान के अभाव में उनका मन-प्रसर उन्हीं की भाँवों भरता रहता है। वे उर्वशी से इस विरक्ति की पुष्टि भी करती हैं किन्तु स्वकी उर्वशी की वाञ्छित प्रतीति के प्रतिवृत्त बुद्धि होकर वे इसी प्रेम की वरम कृता मानने लगती हैं कि निष्काम य निष्काम शीघ्र जीवकर की गयी ऐन्द्रिय सुष्टि की अदृश्य असीम शक्ति की आराधना है। जिसके समस्त मोक्ष प्राप्ति भी संभव होन है। वरम ऐन्द्रिय तर्पण से उन्हीं में शक्ति भीती के प्रति कुछ विरक्ति भाव पुनः जीव फटता है और तभी उन्हीं रति सुप्ति का माध्यम उर्वशी अनुपलब्ध हो जाती है। और जब उन्हीं निर्रिक्तपुत्र मन की रीझकर रति पुत्रन में व्यक्त करने वाली सौन्दर्य प्रतिमा उर्वशी नहीं रहती होती तो वे प्रकृत्या प्रसन्न हो जाती हैं।<sup>1</sup>

पुरावा की मनीषणा का परिचय कुछ उल्लिखितों से मिल जाता है। वे उ दिव्य प्रभा की कस्तूर जाने की आसुर हैं जो उर्वशी के वस्तुनिष्ठ व्याप्त है और जिसमें उनकी विरक्ति समर्थ हुई है अथवा उर्वशी अपने विराट स्व में पुरावा की ही समर्पित किये हुए है। पुरावा उस वरता का रहस्य समझने की व्यग्र-विक्षा है जो देह ब्रह्म स्त्री-पुरुष की प्रकार के भाँवों से मुक्त स्वरूप है -

दीनी है प्रतिमान किसी एक ही मूल करता है,  
देह-बुद्धि से परे नहीं जो नर अथवा नारी है।<sup>2</sup>

1- डॉ० राजपाल शर्मा- युग वेता दिग्गज और उनकी उर्वशी पृ० 268

2- दिनकर : उर्वशी (सुतीय अंक) पृ० 60

शारीरिक कृता उसी भीम प्रतीभन से मुक्त होकर वे उस कदुवा जगती के दर्शन पाने की चेष्टा में हैं। शारीरिक अस्तिव के भाव शून्य में स्थिति हो जाती है। हृदय के उस निगूढ़तम प्रदेश में पहुँचना चाहते हैं जहाँ प्रेम और रोकाई उठती ही नहीं है। तत्पर्य यह है कि उनकी यह आसुरता शान्त रस की उस दशा की पहुँचने की विवक्षता है जिसमें राग दौख विन्ता, दुःख-दुःख आदि की प्रतीति नहीं होती, न कीर्त बन्धा रोध रहती है। किन्तु इस स्थिति तक जाने का साधना मार्ग अतीव दर्शन है। शारीरिक प्रतीभन पुण्य मन-भ्रमर की उर्ध्व उड़ान की बार-बार अवलोक कर देते हैं: प्रती की भीगा कृत मन उसे अभीष्ट तक पहुँचने नहीं देता।<sup>1</sup> पुनरावृत्ति की अभीष्ट सिद्धि नहीं कर पाते क्योंकि उन्हें तत्त्वज्ञान नहीं हुआ है। तत्त्वज्ञान का उर्वशी से उन्हें प्राप्त होने वाला उपदेश ग्राम्य है क्योंकि उसमें काम कृति की वं जीवन के वाम पुत्कार्य मोक्ष प्राप्ति के पद पर विधान का अग्रह है। उर्वशी द्वारा प्रतिपादित प्राप्त जीवन-दर्शन से मोक्ष का स्वभाव स्पष्ट नहीं। उर्वशी स्वयं भी इस वास्तविकता की स्वीकार करती है क्योंकि जानूँ वह है जो सिर पर बढ़के बीते -

“ प्रकृति नित्य आनन्द मयी है, जब भी फूल स्वयं की,  
हम निर्गुण के किसी रूप ( नारी नर या कुली) से,  
एक तान होकर जी जाते हैं समाधि निस्त में  
धूल जाता है कर्म, धार मधु की बहने लगती है,  
देवित जग की बीड़, कहीं हम और पहुँच जाते हैं,  
मानी माया वरुण एक क्षण मन से उतर गया ही।”

वास्तव में नर-नारी जब स्वयं की भुलकर एक दूसरी के अस्तित्व में एक तान होकर निस्त सम्पत्ति की जिस दशा में पहुँचते हैं और वहाँ हृदय कर्म के क्षिप्त से जी मधु उर्ध्व होती है वह क्षण स्थायी है जीगीता की उस शाश्वत योग समधि

1- दिनकर : उर्वशी ( तृतीय अंक ) पृ० 62

2- वही : वही : वही पृ० 83

के पालन के वातावरण है जिसमें जिस के राम जाने पर सत्य की अज्ञानता अज्ञानभाव में ही लपुट रहती है। पुराण का वरम उद्देश्य सुखभाव की उस स्थिति की प्राप्ति करना ही है जिस आनन्द वर्त्म में शान्त रस का स्थायी भाव स्वीकार किया है। उर्वशी का चेहरा उन्हें इस स्थिति में पहुँचाने नहीं देता। अन्त में पुराण स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि उर्वशी के विनाश तथा माया जल में कंस कर उन्हें अपने मूल उद्देश्य की भुला दिया है अन्त के आवरण से अपने मन में होने वाली सन्देश की स्वी नहीं सुने ? अतः पुराण अपने चिर वैधित्य पुरुष के समस्त और पत्नी, परिजन, पुराण, के मोह की त्याग का प्रवृत्ति हो जाती है। कृति का समाधान निर्दोष भाव का सुख है।

कल मिलकर यह कहा जा सकता है कि अलीप्यकृति में न तो मीनार रस का ही सत्य और पूर्ण परिपाक है कुल है और न शान्त रस की ही व्यापक और वरम अभिव्यक्ति । तब कि इन विरोधी रसों का अद्भुत गदहमय ही उसमें विद्यमान है। इस रस योजना का महत्व यही है कि आज के युग में जब चौपदी, अष्टपदी, अष्टपदी या पदी की दृष्टि से संगीत, रस शुद्ध कविताओं का समन्वय है, प्रभुत कृति सुदय की रसमन करने की दिशा में काफी दूर तक जाती है।

'उर्वशी' में अभिव्यक्त आधुनिक समस्याएँ एवं अर्थ :-

'उर्वशी' की कथ्यगत सौन्दर्य-वैतना की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि पौराणिक प्रसंगों के आधार पर रही जाने के बावजूद भी यह कृति आधुनिक युग की प्रमुख समस्याओं का ही चित्रण करती है। वर्तमान समाज में स्त्री-पुरुष सम्बन्धी तथा प्रेम की सही भूमिका क्या हो सकती है ? वैवाहिक जीवन में काम तथा प्रेम का सम्बन्धन किस प्रकार सम्भव है ? युवक-युवतियों के पारस्परिक प्रेम की वरम परिणीत भारतीय नैतिकता के द्वारा सम्भव है अथवा पश्चात्य सखन्द प्रेम पद्धति के अनुकरण द्वारा ? आदि ऐसे अनेक प्रश्न हैं जो अपने लिए उपयुक्त हल तथा समाधान की माँग करते हैं।

उर्वशी में इन प्रश्नों की काव्यरम्य रूप में हल करने का प्रयास किया गया है

उर्वशी में अभिव्यक्त विवाह, नैतिकता, काम, प्रेम, आदि समस्याएँ उत्तम मानव जीवन की ही प्रमुख समस्याएँ हैं। उर्वशी काव्य की समाप्ति पर पन्त की लिखे गये काव्य पत्र में 'दिनकर' ने काम एवं प्रेम की सामाजिक विवेकसिद्धि तथा भविष्य की सम्भावनाओं की ओर ही संकेत किया है। कथा का पौराणिक आधार तो उँ कवि ने एक जीवन्त तथा लोकप्रिय क माध्यम के रूप में चुना है। किन्तु कवि का मुख्य उद्देश्य वैराग्य और भोग वृत्तियों के दृष्टिकोण से उत्पन्न मनोबुद्धियों का निराकरण करने का प्रयास करना ही है -

“ भूतल पर ठहरे स्वर्ग जल, है, बीत रहा यह काम कास  
जी प्रणय सिध्द आहत भूति है, यह उसी काम युग की वृत्ति है।<sup>1</sup>

यदि उर्वशी की भुक्तिका का कुछो कुछ अध्ययन अवलोकन किया जाय तो 'उर्वशी' के मूल प्रतिपाद्य का संकेत हमें सरल ही मिल जाता है। वृत्ति के प्रत्यक्षतम में यह लिखकर कि -- "मनीषिजन विद साधन का संकेत देने लगा है वह वैराग्य नहीं, योगी ने मेरी का संकेत है, वह निषेध नहीं, स्वीकृति और सम्मेलन का संकेत है :- - - - - देखा वह नहीं जो सारी आसक्तियों की पीठ देकर, सबने भग्न रहा है। देखा वह है जो सारी मासक्तियों के बीच अनासक्त है, सारी भ्रष्टाचारों की भीमते हुए भी निभुर और निर्लिप्त है।<sup>2</sup>

हमारे विचार से यही 'उर्वशी' का मूल प्रतिपाद्य विषय अथवा उसकी प्रमुख समस्या है जिसका निदान कवि की अभिव्यक्त करना था। यह दूसरी बात है कि कवि उसे ठीक-ठीक उतनी पूर्ण और स्पष्ट अभिव्यक्ति नहीं दे सका जितनी कि उनकी दार्ष्टिक अपेक्षा थी।

'उर्वशी' की कथ्यवस्तु के संदर्भ में यह स्पष्ट किया गया है कि उन पर उद्देश्य तत्त्व तथा की0एच0लॉरीस के विचारों का पर्याप्त प्रभाव रहा है। दोनों ही

1- दिनकर: मृत्तिसिद्ध, पृ० 96

2- दिनकर: उर्वशी(भुक्तिका) पृ० 8, 9

पारवर्ण्य श्रद्धाओं का धर्म आज के विश्वे हुए स्त्री-पुरुष ( पति-पत्नी) सम्बन्धी में किसी भी प्रकार धार्मिक, सम्बन्ध तथा स्वतन्त्रता स्थापित करना रहा है वे नर-नारी के सम्बन्ध की दृष्टि तर्पण न मानकर उच्च धर्मों की प्राप्ति का हीमान मानते हैं, किन्तु आज के मानव के उस मन प्रभार के लिए क्या कहा जाये, जो माया प्रेम से अस्तित्व होकर अन्य नारी पुरुषों पर फेंकता है। अल्पकालिक अनुभव करता है तथा जिसके विषय में रसल का अभिमत है कि वर्तमान वैवाहिक जीवन की एक बड़ी विषम बाधा प्रेम के विस्तृत प्रबुद्ध लोगों की विवाह न करने की इच्छा है क्योंकि इस स्थिति में अधिकार व कष्ट कर्तव्य की गन्ध से युक्त प्रेम का उद्भव व सबल रूप नहीं रहता ।<sup>1</sup> तारीफ भी यही मानते हैं कि आज के युवक- युवती वरिष्ठों से ही विवाह करते हैं अतः लोग ही जब वर पाल्यार पूजा करने लगते हैं। इनके लिए यह न करके मैत्री सम्बन्ध रहना ही बेवफा है।<sup>2</sup>

भारतीय सामाजिक और नैतिक मान्यताओं के अनुसार विवाह एक पवित्र 'सर्वे भ्रात्री प्रेम सम्बन्ध' है। इसमें सम्बन्ध प्रेम के समावेश से विकास उत्पन्न हो जाता है अतः यह एक समाज निर्मात्री कृत्य माना जा सकता है। जब कि पारवर्ण्य संस्कृति धार्मिक व नैतिक मान्यताओं की दक्षिणामुखी तथा स्त्री-पुरुष की कामक्षेत्रता की कुण्ठित कर देने जाता तब मानती है। अतः उसे उतार फेंकना चाहिए। ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि सामाजिक मानव कौन सी विचार धारा का अनुसरण करे। इस दृष्टि से 'दिनकर' रसल के विचारों का पक्ष लेते हैं।<sup>3</sup>

अतः 'दिनकर' ने रसल की विचार धारा की प्रवृत्ति को लिया है किन्तु स्वकीय तथा सीमित रूप में। यही कारण है कि जोखिमों की पुररक्षा की भाँति पार-पुरुष से अलग दृष्टि करने का अवसर देने का साहस उन्होंने नहीं किया। साथ ही पुररक्षा के अधुनिक दृष्टि से अनेक सम्बन्ध के जोखिम की सिद्धि के निमित्त

1- मैरिज एंड मॉरल्स पृ० 113

2- लेडी वेटलीज लवर् एंड अदर रिलेटिव पृ० 113

3- एडिटेड 'दिनकर' धर्म नैतिकता और ज्ञान पृ० 22 से 24

उत्प्लुतः उर्वशी में अभिव्यक्त काम की समस्या आधुनिक युग की एक अवधारण समझ्य है। काम के वासना यम का शिखर होकर हम एक ही क्रिया की बार-बार दुहराना चाहते हैं और क्षणिक आनन्द की प्राप्ति करते हैं। इस स्थिति में चूंकि हम प्रेम नहीं करते और सर्वनात्मक नहीं रहते अतः उर्वशी का भार उतारने की- के लिए कैस में निराश होजते हैं।<sup>2</sup> आज की भौतिक एवं उपयोगितावादी दृष्टि और कामसूत्र का मोह हमें प्रगाढ़ सुख तो दे सकता है किन्तु शान्ति नहीं, चूंकि हमारा प्रेम एक निष्ठ न होकर बसना मात्र है। हम राग-विराग के झुझीलों पर कुसते रहते हैं अतः कैस हमें पुला-पुलाकर मारने जता पीठा जहर बन गया है।

आज के मानव की स्थिति-जना यह है कि वह कैस में न तो पूरी तरह अपने की समर्पित करता है और न उससे पूरी तरह मुक्त हो जाता है। उसकी गति संतुल्य-बहुल जैसी है। उसके हृदय की धारा मन्द पड़ गयी है और मन का दीप बहता बसा जा रहा है। कैस का समाधान उक्त 'सांसारिक' जीवन में देखना है,

[illegible]

- 1- मुक्ति तो यही कहती है कि नकाब पहन कर अकाली बेहरे की शिपा होने से पुण्य नहीं बढ़ता होगा, फिर भी हर आदमी नकाब लगाता है, क्योंकि नकाब पहने बिना घर से निकलने की समाज की ओर से मनाही है।
- 2- श्री- गीरलतय : यही राष्ट्र का विदिनकर ( ठा० विवेकानाथयन सिंह ' उर्शी' काम की आधुनिक समझ ) पृ० 57- 58

बुद्धि-शब्द की निर्दिष्टता में देखा जाता है। इस रूप में हम पुरुरवा की केश के शब्द का हेमलैट कह सकते हैं। उसके माध्यम से उत्तमान मनुष्य के काम मूलक अन्तर्द्वन्द्व की उर्वशी में चित्रित किया गया है।<sup>1</sup>

पुरुरवा तथा उर्वशी वैरागिक होकर भी स्नातन नर और स्नातन नारी के प्रतीक हैं। नारी नर की कृपार कृत नहीं होती और नर नारी के आर्त्तगम में संतोष नहीं पाता। कोई शक्ति है जो दोनों की जगमगी नहीं रहने देती और मिलना वध में भी उनमें एक ऐसी कृपा का संसार करती है जो शरीर के धरातल पर व्याप्य है। इन्द्रियों के मार्ग से अतीन्द्रिय धरातल का यह धरा की प्रेम की आध्यात्मिक पहिचान है।<sup>2</sup> इसी लिए आचार्य स्वामी प्रसाद दिव्य ने पुरुरवा की 'कीर्तिवत्तवीर' और उर्वशी की 'उद्ददाम मानव-वेग' का प्रतीक मान्य रखा। शाश्वत अक्षय तत्व के युक्त पुरुरवा इस मानव वेग का शिकार है जो व्याकुल तो होता है किन्तु हार नहीं मानता।<sup>3</sup> डॉ० कुमार निम्न ने पुरुरवा की क्रियाशीलता, सहनशीलता का उपासक, शिराग लोक का रक्षक और मधुवन का संध्याकी मन्त्रा है और उर्वशी की क्रियाशीलता की उर्ध्वमुखी प्रेयसी विस्तारमणि के रूप में देखा रखा।<sup>4</sup>

किन्तु यह मन्त्रिता अत्यन्त भ्रमक व झोझरी है जो पाठक या आलोचक की उर्वशी के मूल प्रतिपादय में बहुत दूर पहुँचा देती है।

'दिनकर' में धर्म के काम पर काम की बरम पुरुराई लिख दिया है। उन्होंने तन के काम की अमृत और मनके काम की गरल कहा है। इन दोनों मन्त्रितारों की लेकर अतीवकी में दिनकरजी से अति ही नहीं मिलता, डटकर उनका सामना भी किया है। मनीषिजीवन की

1- डॉ० सावित्री लिंगा : युग बाराह दिनकर पृ० 193

2- दिनकर : उर्वशी ( भूमिका) पृ० 4

3- लिंगा डॉ० गोपालकृष्ण कोसः दिनकर : प्रष्टि और दृष्टि पृ० 213

4- दिनकर : पृ० 209



कसोटों पर 'दिनकर' की धारणा धरी नहीं उतरती मनोविज्ञान में काम का मूल आधार मानसिक है तब का काम आसक्त भी मन का विषय है उसी निमित्त पुष्कल तब के काम की कृता नहीं है।<sup>1</sup> ऐसी स्थिति में जब मन के काम के अभाव में तब का काम अभ्यर्थ ही नहीं। अतः पुष्कल और कुठारा की स्थिति की बीड़कर कल कल की कल की गल और दूसरे की पुष्कल करने की बात पढ़वी के गले नहीं उतरती ।

अतएव मैं ' कामाध्यत्म' तथा भिन्न काम अपने में कई अक्षर तथा रस्यमय रस है उनके अटपटे और गल-मल होने के कारण ही समीक्षा में उर्वरी की कवि में मनोविज्ञान पर आधारित ही पूर्ण काव्य कहा है। मुक्ति बोध के काल में ' ' कामाध्यत्म' रस्यमय रस के जल में ही जल है के अन्त में उनका (प्रती युगत) आध्यत्मिकता नहीं दिया जा सकता । ऐसे प्रभावान भीनी कितने है जिसे रस पुष्कल की बल परिणति में अतीव्रिय कृता का अभावकार होता है? क्या वे इस समय भारत में उपलब्ध हैं? और क्या उनके लिए काव्य का सुख दिया जाना चाहिए, दिया जा सकता है ।) रस कवि ' दिनकर' जगज्ज है । . . 2

अतः उर्वरी में काम की प्रभावान बनाने का उद्देश्य ही कवि के मस्तिष्क में नहीं रहा । उसकी दृष्टि में उर्वरी केवल सनातन नारी ही नहीं राम लक्ष्मण की कल आदयःपुष्कल भी है। पुरुरा की लक्ष्मण सेने और उर्वरी के लिए पूरी तरह कलकर सामने न जल तथा जोड़ीनारी की न पूर्णतः त्यागने और न पुनः उसकी और सोटने की विकलता और तदुपम अन्य कवि की विकलता और पुनः है। व्यक्त की दृष्टि में व्यक्त काम की प्राप्ति कभी तपस्या और यज्ञ है जिसमें कामदेव की आराधना तथा प्रार्थना मानी जा सकती है। पुरुरा इसी से प्रेरित होकर अपने जीवन की अपूर्ण काम-संस्तिकी पूर्णता के लिए उर्वरी की

1- ६१० मीन्द्र : आभा के बरज पृ० ६०८

2- कपना : ( मानिक ) उर्वरी समीक्षाएं प्रविष्टियां ( परिवर्त ) जनवरी १९६४ पृ० ३६

जन्म जन्मान्तर के लिए पाने की प्रयत्नशील है। सामाजिक तन्त्रियों के प्रति शिरोधार्य साधक, शौर्य और क्रांति की माँग करता है उसका समाज पुरस्कार जैसे वैयक्तिक व्यक्तित्व में न करके कवि में पौराणिक कथा की छ उन्मूलन से तथा पुरस्कार की विविध और स्वाभाविक रीति से करा लिया है।<sup>1</sup>

स्पष्ट है कि 'उर्वशी' का कथानक अधुनिक और नवीन है। उस असीमा मानव जीवन की विराट, काम और प्रेम सम्बन्धी विकसितियों की इसमें सफल अभिव्यक्ति मिली है। काम के कुछ छल्ले और स्खल्ल प्रेम के वातावरण में 'दिनकर' के विचारी की समझने की ओर भी अधिक जरूरत है। कथन में कहीं-कहीं मनी-प्रियान और दर्शन के धट्टीय से पाठक की कृति के मूल प्रतिपादय तक जनि के लिए बुद्धिव्यायाम अक्षय करना पड़ता है। इसका कारण कथा के प्रमुख चरित्रों के अन्तर्गत विद्यमान द्विविधि एवं अभिमतार्थ है। ये अभिमतार्थ उर्वशी में अधिक पुरस्कार के चरित्र में और पुरस्कार से कहीं अधिक ओशीमरी के चरित्र में है।

1- कथन : ('उर्वशी' का अधुनिक परिप्रेक्ष्य) लेख

तृतीय अध्याय

उत्पत्ति: मन्दिर का व्यावहारिक विवेचन

## उत्पत्ति: सौन्दर्य का व्यावहारिक विवेचन

=====

सभी कलाओं का मूल वह सौन्दर्य है जो अनेकता में एकता के अन्तर्धान से उत्पन्न होता है। इसीलिए देशकाल और प्रवृत्ति के अनुसार सौन्दर्य की विभिन्न रूपों में देखा गया है। सौन्दर्य केवल मानव प्राणियों की ही सम्पत्ति नहीं मानी जा सकती है बल्कि हमकी मत्ता मानवैतर जगत् में भी है। सौन्दर्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। सौन्दर्य के क्षेत्र की इस व्यापकता के कारण विद्वानों ने सौन्दर्य को अनेक तर्कों में विभक्त किया है।<sup>1</sup> यहाँ पर प्रस्तुत कुछ शोध प्रबन्ध में सौन्दर्य के सभी तर्कों पर विचार करना सम्भव नहीं है। केवल सौन्दर्य के दो मुख्य रूपों - मानवीय सौन्दर्य तथा प्राकृतिक सौन्दर्य पर विचार किया गया है वस्तुगत सौन्दर्य एवं कलागत सौन्दर्य शिल्पका विषय होने के कारण इन पर पुनः विचार किया गया है।

### मानवीय सौन्दर्य :-

-----

मानवीय सौन्दर्य काव्य की मूल प्रेरणाओं का उद्गार प्रीत है। कवि मानवीय रूप सौन्दर्य की माधुरी का आश्वासन करते ही अपना जगत् में सौन्दर्य का दर्शन करने लगता है। हमारे मूल संस्कार मानव जगत् में ही बनते हैं। मानव सौन्दर्य कलागत सौन्दर्य के मुख्य आधारों

1-क-डा० रामेश्वर लाल अहिरवाल : 1-मानवीय सौन्दर्य 2-प्राकृतिक

सौन्दर्य 3-वस्तुगत सौन्दर्य 4-कलागत सौन्दर्य

आधुनिक हिन्दीकविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ० 174 से 194 तक

क-डा० हरदारी लाल शर्मा : 1-दृश्य सौन्दर्य 2-प्राकृतिक सौन्दर्य

3-मानव सौन्दर्य 4-कलागत सौन्दर्य 5-साहित्य सौन्दर्य।

सौन्दर्यशास्त्र, पृ० 25 एवं निष्ठा मुची से

स-डा० नगेन्द्र : 1-शारीरिक सौन्दर्य 2-मानसिक सौन्दर्य 3-नैतिक सौन्दर्य

4-पुनःत्मक सौन्दर्य। भारतीय सौन्दर्य शा० की भूमिका, पृ० 21

द-डा० र. कुन्तला शर्मा : 1-साहित्य सौन्दर्य 2-प्रकृति सौन्दर्य

3-मानवीय सौन्दर्य 4-वस्तु सौन्दर्य। आधुनिक काव्य में सौ० भावना, पृ०

निष्ठा मुची से।

य-डा० सुरेश चन्द्र तलागी : 1-कल्पना का सौन्दर्य 2-व्यक्ति का

में से एक है ।<sup>1</sup>

मानव चर पृथ्वी का प्राणी है सोन्दर्य का प्रमाता भी मानव है इसीलिए मानव सोन्दर्य ने उसे लगातार आकृष्ट किया है । जगत की सभी वस्तुएँ किसी न किसी दृष्टि से आकर्षक होती हैं । मानव दृष्टि की सुन्दरतम रचना है -

सुन्दर है विहग सुमन सुन्दर  
मानव तुम मखमे सुन्दरतम ।<sup>2</sup>

मानवीय सोन्दर्य का आकाश लेकर ही मानव प्राकृतिक तथा वस्तुगत सोन्दर्य की ओर उन्मुख होता है । मानव का सोन्दर्य विविध रूपों परिलक्षित होता है । कभी उसकी बाह्य आकृति, संगठन, रंग-भूषण प्रमाता कवि ही की दृष्टि की परब्रह्म अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है, और उसके कभी द्वारा किये गये योग्य मर्य कार्य । मानव सोन्दर्य का पूर्ण आश्वासन निम्नलिखित दो श्लोकों में किया जा सकता है ।  
बाह्य सोन्दर्य :-

साहित्य में मानव के बाह्य सोन्दर्य का प्राचीन काल से आधुनिक काल तक निरन्तर होता चला आया है । अनेक महाकाव्यों में जैसे पुराणी राज राखी, कामायिनी प्रिय पुतास आदि में नयन-मिल नयन के द्वारा बाह्य सोन्दर्य का वर्णन अत्यन्त उदात्तों के है । मानव के बाह्य सोन्दर्य उत्पत्ति जारी एवं पुरुष की बाह्य आकृति, शारीरिक गठन, वर्णदीप्ति, अंगों प्रत्यङ्गों का चित्रण किया जाता है । इसके साथ ही साथ मानव के निजी उपयोग में लगे गये विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों का भी इसके अन्तर्गत चित्रण किया जाता है । कभी-कभी मानव की विशेष शक्ति सोन्दर्य प्रमाता कवि की अत्यधिक आकृष्ट कर लेती है ।

1-डा० रामेश्वर नाथ खन्डेवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सोन्दर्य, पृ० 175

2-पं० सुमित्रानन्दन पन्त : युगान्त , पृ० 48

और कति निजि कल्पना के माध्यम से उसका अन्त-निष्पन्न करता है। यही मानवीय सौन्दर्य का वाह्य अथवा रूप सौन्दर्य है।

अन्तः सौन्दर्य :-

जिस प्रकार मानव सौन्दर्य का चित्रण उसकी वाह्य स्थाकृति, ममृति, अंग संगठन, वेशभूषा आदि के द्वारा किया जाता है उसी प्रकार मानव सौन्दर्य का दूसरा फल अन्तः सौन्दर्य है। मानव की वाह्य स्थाकृति तो केवल नेत्रों की ही आकृष्ट करती है किन्तु, उनके आन्तरिक गुण गण्य इन्द्रियों को आकृष्ट करते हैं।

मानव सृष्टि की सुन्दरतम रचना होने के कारण उसमें कुछ गुण विशिष्टमान रहते हैं जैसे उदारता, धैर्य, दृढ़ता, तीरता, मत्वादिता आदि गुण एवं सेवा, परीकार आदि कार्य व्यापार तथा लज्जा साहसभूति, क्षम, प्रेम आदि। इन आन्तरिक गुण एवं भावों के विश्वप्रभाव करारी स्त्री में प्रमाता अर्थात् कृत्तियाँ इतनी लीन हो जाती हैं कि वह उन गुणों एवं कार्यों व्यापारों का चित्रण बड़े सौन्दर्य पूर्ण ढंग से करता है। भारतीय विचारधारा के अनुसार तो अच्छा सौन्दर्य मानव के इसी आन्तरिक गुणों एवं भावों में माना जाता है।

मानवीय सौन्दर्य के उपर्युक्त दो रूपों - वाह्य सौन्दर्य एवं अन्तः सौन्दर्य को यदि संक्षिप्त रूप में कहा जाय तो यह कि मानव के वाह्य सौन्दर्य के अन्तर्गत उसकी वाह्य आकृति, रूप, वेशभूषा, अंग संगठन आदि का वर्णन आता है और अन्तः सौन्दर्य में निहित गुणों जैसे सील, विन्या, परीपकार, क्षम आदि अनेक भावों का वर्णन आता है।

दिनकर कृति उत्तरी में मानवीय सौन्दर्य का व्यावहारिक निवेदन करने से पूर्व मानव सौन्दर्य के कुछ प्रमुख लक्षणों का उल्लेख करना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है। क्योंकि कि मानव सौन्दर्य को समझने के लिये उसके लक्षणों का ज्ञान आवश्यक है। मानवीय सौन्दर्य के कुछ प्रमुख लक्षण अग्रे लिखित हैं।

1-मानव रूप उच्च परिवर्तनशील है इसी कारण मानवीय सौन्दर्य भी परिवर्तनशील है ।

2-मानवीय सौन्दर्य काव्य प्रमाता कवि का प्रमुख प्रेरक तत्व है ।

मानवीय सौन्दर्य से प्रभावित कवि सम्पूर्ण सृष्टि में सौन्दर्य का दर्शन करने लगता है । वह जठ चेतन, सम्पूर्ण प्रकृति में अपने ज्ञान की जाली फैला लेता है ।

3-मानव सौन्दर्य प्रकृति पर आधारित है शरीर में सुन्दर स्वरूप , आकर्षक बलिष्ठ एवं पृष्ठ बनाने के लिये मनुष्य समस्त वदार्थों को प्रकृति से ही ग्रहण करता है । वास्तव में प्रकृति की सार्थकता मानव की समस्त सौन्दर्य प्रसाधनों की प्रदान करने में है ।

4-मानव का सौन्दर्य उपयोगिता पर भी निर्भर करता है । इस गुण के अभाव में सुन्दर व्यक्ति भी असुन्दर लगने लगता है ।

डा० पुरुषोत्तम दास अग्रवाल ने भी सौन्दर्य निश्चरण में उपयोगिता के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है - "उपयोगिता के आधार पर वस्तु या व्यक्ति के सौन्दर्य का मुख्य छेदा या बटता रहता है । भौतिक तत्वों के उपयोग का प्रमुख साधक माध्यम सौन्दर्य है और मानसिक तृप्ति में आन्तरिक भावनाओं की प्रमुखता होती है । । -

5-मानवीय सौन्दर्य निश्चरण की कोई सर्वमान्य कमीटी नहीं है । सभी प्रकार के सौन्दर्य की भाँति मानवीय सौन्दर्य, भावना रुचि, आचार-निचार मनीषित्व , संस्कृत अर्थात् भौतिक तथा सांस्कृतिक परिवेश पर आधारित है ।

6-सुन्दर के ग्रहण तथा असुन्दर के परित्याग के कारण मानवीय सौन्दर्य मानव हृदय में उल्लेख, ईर्ष्या आदि भावनाओं को जागृति करता है ।

7-अध्यात्मवादियों की दृष्टि से मानवीय सौन्दर्य की पूर्णता तात्त्व एवं आन्तरिक सौन्दर्य (गुण)-सौन्दर्य ! के मधुर सामंजस्य में है ।

1-डा० पुरुषोत्तम दास अग्रवाल : मध्यकालीन ब्रह्मण काव्य में रूप सौन्दर्य

8-मानवीय सौन्दर्य ग्रहण करने वाले व्यक्ति के हृदय में प्रेम भावना की भी जागृति करता है ।

9-स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन होता है । यह मानने वाले शारीरिक एवं मानसिक सौन्दर्य की परस्परि सम्बन्धित मानते हैं ।

**मानव सौन्दर्य की परिधि :-**

मानव सौन्दर्य के अन्तर्गत प्रमुख रूप से युवा पुरुष एवं नारी का सौन्दर्य वर्णन आता है । बाल, युवा एवं बृद्ध सौन्दर्य हमके पुनः वर्गीकरण किये जा सकते हैं नारी की कोमलता तथा कण्ठा पुरुष की कठोरता तथा कुरता एवं बालक का जीला पन एवं सरलता सम्बन्धित होकर आकर्षक बनती है । यही कारण है कि प्रस्तुत अध्यायन की आधारभूति कृति उत्तरी में सू कवि ने युवा पुरुष, युवती एवं बालक के तात्पर्य एवं अन्तः सौन्दर्य वर्णन को काव्य का आधार बनाया है ।

**पुरुष सौन्दर्य :-**

कवियों ने पुरुष सौन्दर्य का वर्णन नारी सौन्दर्य की अपेक्षा अन्य मात्रा में किया है । सम्भवतः इसका मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि नारी सौन्दर्य में प्रभाता कवि को पुरुष सौन्दर्य की अपेक्षा अधिक आकृष्ट किया है । पुरुष के पौरव, कुरता, कठोरता के चित्रण में कवि की चित्रवृत्ति अधिक न रम सकी किन्तु फिर भी पुरुष सौन्दर्य का चित्रण उसके पूर्व कवि दोनो रूपों - वाह्यसौन्दर्य तथा अन्तः सौन्दर्य के माध्यम से किया है पुरुष का वास्तविक सौन्दर्य आन्तरिक पौरव गुण की तात्पर्य कृता - अर्थ सौन्दर्य से निखार पाता है ।

**नारी सौन्दर्य :-**

पुरुष सौन्दर्य की भांति नारी सौन्दर्य की भी दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है - वाह्य सौन्दर्य, अन्तः सौन्दर्य



वाह्य एवं अन्तः सौन्दर्य के विषय में जैसे पूर्व पृष्ठों में स्पष्टीकरण किया जा चुका है फिर भी स्त्रीय में नारी के वाह्य सौन्दर्य के वर्णन में कवियों ने इसके अंग संगठन, वैभूषण, अलंकारों, हेम्पटाओं, केशों तथा अन्य सौन्दर्य प्रसाधक उपकरणों का वर्णन कर वाह्य सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की है। अंगों का वर्णन प्रायः नक्ष-मिश्र वर्णन के रूप में किया गया है। अंगों की सुशोभिता, आकर एवं गठन, मन्तुलन सुकुसुमास्त्रता, अभिरूपता, उन्मादकता तथा वाह्य रंग रूप की और कवि का विशेष ध्यान गया है।

नारी के अन्तः सौन्दर्य के अन्तर्गत उसमें निहित गुणों जैसे नज्जारीय, तात्त्विकमई भाव एवं प्रेम, गरीपकार, कृणा, दया आदि आन्तरिक गुणों एवं कार्य व्यापारों के आधार पर अन्तः सौन्दर्य काचित्रण किया जाता है। नारी के अन्तः सौन्दर्य केभाव के विषय में कवि प्रसाद जी उक्ति के ये शब्द-  
 'नारी का हृदय कोमलता का पालना है, दया का उद्गम है, नीतलज्जा की छाया है और अमल्य भक्ति का आदर्श है।' <sup>1</sup> भारतीय नारी का सच्चा सौन्दर्यजसके इन्हीं उपर्युक्त गुणों के होने में है इनके न होने पर केवल वाह्य रूप आकृति में सच्चे सौन्दर्य के दर्शन नहीं होते हैं। डा० छन्देयबाल के शब्दोंमें - 'इस [अन्तः सौन्दर्य]गीत के अभाव में भारतीय नारी का सौन्दर्य निस्सार समझा गया है।' <sup>2</sup> ऐसी नारियों के पर्याप्त उदाहरण मिल जाते हैं जिनमें देशभक्ति -वीरत्व की भावना भरपूर होती है। नारी एक और जितनी कृणामई है दूसरी और उतनी शक्तिशाली भी -  
 'वापस्तिकाम में देश की शत्रुओं से मुक्त करने के लिये अतारहीणी रणलण्ही बनकर तिजली सी लपलवाती समवारहाथ में किये अरिदल को चीरती

1-प्रसाद: अजातसत्र, [तृतीय अंक] पृ० 106

2-डा० रामेश्वर नाल छन्देयबाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ० 179

इस बीर नायिका का सौन्दर्य भी नारी सौन्दर्य की सीमा के अन्तर्गत ही है। यह सौन्दर्य उसकी शोभा व महिमा को मलिन कर देता है।<sup>1</sup>

नारी का पूर्ण सौन्दर्य न तो बाह्य सब स्वरूप अर्थात् बाह्य सौन्दर्य से ही पूर्णता को प्राप्त होता है और न उसके गुणों की अभिव्यक्ति में ही। स्थूल एवं सूक्ष्म अथवा बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य मिल कर ही नारी सौन्दर्य की भावना कराते हैं। अतः नारी का सौन्दर्य अन्तः बाह्य के सामंजस्य में ही माना जा सकता है।

**बाल सौन्दर्य :-**

बालक की चंचलता एवं निष्कपट व्यवहार सर्वत्र विद्यमान है। बालक अन्तः बाह्य एक जैसा होता है। मुरदास जैसे बाल स्वरूप के गुमास्ता कवि ने इन गुणों को सर्वत्र उभारने का प्रयत्न किया है। बाल सौन्दर्य में बालक का रूप मावण्य उसकी चेष्टाएँ ही बहस्य पूर्ण स्थान रखती हैं। बच्चे के आन्तरिक सौन्दर्य कोष्ठ में (निष्कपटता) भोलापन, सरलपन, निरालापन आदि का वर्णन भी यही सर्थ, मुरमुपन्त आदि कवियों ने किया है।<sup>2</sup>

मानवीय सौन्दर्य का स्वरूप माने नारी, पुरुष बाल सौन्दर्य तीनों के ही सामंजस्य में निखार पाता है अर्थात् मानवीय सौन्दर्य की पूर्णता इन तीनों प्रकार के बाह्य एवं अन्तः सौन्दर्य के समन्वय में ही है।

मानवीय सौन्दर्य का स्वरूप एवं परिधि निम्नलिखित होने के उपरान्त अपने विषय के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में इन्हीं उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर विवेच्य कृति 'उर्वशी' में

1- डा० रामेश्वर लाल छठेराबाबू : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ० 179

2- डा० रामेश्वर लाल छठेराबाबू : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ० 180

सौन्दर्य का व्यवहारिक विवेचन किया जायेगा ।

दिनकर सौन्दर्य के कवि हैं अधिकतर कविानों में उन्हें जीज एव सौर्य का कवि तिष्ठ किया है । वस्तुतः जीज एव सौर्य का मूल आधार भी सौन्दर्य होता है । जो जितना सुन्दर है वह उतना ही जीज पूर्ण एव सौर्य पूर्ण होता है। प्रत्येक मानव को किसी न किसी रूप में सौन्दर्यानुभूति अवश्य होती है । सौन्दर्य की भूछ सौ मानव की मूल प्रवृत्ति है वह सुन्दर व अच्छी वस्तु को देखकर उसकी ओर अवश्य आकृष्ट होता है । इस मर्म में आचार्य शुक्ल के विचार—“ सौन्दर्य ने विश्वमें ऐसे दिव्य सौन्दर्यकी सृष्टि की है जिसका आभास मानव की मन, पर्यंत, नदी, निरखर पशु, लक्ष्मी आदि में आदि काल से ही मिलता चला आ रहा है -----सृष्टि के इस अनन्त सौन्दर्य ने उसके हृदय की आन्दोलित किया है और उसमें अनेकानेक भाव लहरियाँ उठाई हैं । मानव हृदय की ये ही भावलहरियाँ सौन्दर्यानुभूति की जननी हैं क्यों कि सौन्दर्य सृष्टि की इस लक्ष्मी एव अनुपम रत्नमायी देखकर कौन ऐसा हृदयहीन व्यक्ति होगा जिसके हृदय में उसके प्रति आकर्षण न हो । सौन्दर्य अपनी ओर हटात आकर्षित करता है ।”

दिनकर कृत उर्वशी में सौन्दर्य की अनुपम छटा दर्शनीय है । प्रस्तुत विवेचन में पूर्ण कथित मानवीय एवं प्राकृतिक सौन्दर्य का क्रमानुसार व्यवहारिक विवेचन किया गया है ।

उर्वशी में मानवीयसौन्दर्य :-

यह हम पहले बता चुके हैं कि मानव सौन्दर्य के अन्तर्गत प्रमुख रूप से पुरुष और नारी का सौन्दर्य वर्णन आता है, किन्तु इसके साथ ही साथ बाल सौन्दर्यका भी विशिष्ट स्थान है । मानव सौन्दर्य की पूर्णता इन तीनों प्रकार के सौन्दर्य वर्णन में है । उर्वशी में भी मानवीय सौन्दर्य के

तीनों रूप पूर्ण रूप से दृष्टिगत होते हैं। अतः यहाँ कुमारा मानवीय सौन्दर्य के तीनों रूपों का बाह्य एवं अन्तः सौन्दर्य के परितोष्य में रखकर मानवीय सौन्दर्य का निरूपण किया गया है। क्योंकि कि उर्वशी के प्रेम्ता कवि दिनकर ने सौन्दर्य को दो स्तरों में अनायास ही एक सौन्दर्य का बाह्य पक्ष और दूसरा सौन्दर्य का आन्तरिक पक्ष।

**पुरुष सौन्दर्य :-**

दिनकर कृत उर्वशी में प्रमुख रूप से पुरुष पात्र हैं- राजा पुरुरवा एवं महर्षि ज्येष्ठ । राजा पुरुरवा की तो सभी गीति नाट्य का नायक भी माना जा सकता है क्योंकि कि वे इस कृति में प्रारम्भ से अन्त तक विद्यमान रहते हैं। महर्षि ज्येष्ठ का प्रामाणिक रूप में वर्णन में आया है जो इस कृति के पुरुष सौन्दर्य की विस्तृति दिगुणित करता है। उर्वशी के पुरुष सौन्दर्य निरूपण में यहाँ पर पुरुष पात्रों का बाह्य एवं अन्तः सौन्दर्य दो स्तरों में विस्तृत प्रस्तुत है।

**बाह्य सौन्दर्य-पुरुष :-**

उर्वशी पूर्व कथनाओं में कवि की दृष्टि विशेष कर सौन्दर्य के बाह्य पक्ष की ओर ही मानी जा सकती है किन्तु उर्वशी में उन्होंने बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा सौन्दर्य के आन्तरिक पक्ष की वर्णन का प्रमुख आधार रख माना है। लेकिन उर्वशी में बाह्य सौन्दर्य वर्णन भी बड़े सुचारु रूप में मिलता है - पुरुरवा एवं महर्षि ज्येष्ठ का वर्णन उनके बाह्य सौ सौन्दर्य की निश्चयता है। राजा पुरुरवा की बाह्य शक्ति बड़ी आकर्षक एवं मनोहारी है। उर्वशी उनके इसी बाह्य सौन्दर्य पर अपना दिन दे बैठती है और उनके बाह्य सौन्दर्य का अन्वय करने लगती है - निश्चयता ही ने पुरुरवा की ज्योतिर्मय एवं विराट शरीर प्रतिमा को किसी कण्ठ पर्यंत से स्वयं काटकर उसे कलाकार की भाँति पूर्ण मनोयोग से बनाया

होगा और उसमें प्राणों का संचार कर नवीन आकर्षक ज्योति उत्पन्न कर दी होगी । विधाता ने ऐसी सुन्दर एवं अद्वितीय मूर्ति का मृत्यु लोक में इसलिए सृजन कि या है जिससे कि देव लोक की अप्सराएँ भी देवों का परित्याग करके उसी पर मोहित होती रही । अथवा धरित्री ने ही ऐसे पुत्र को अपनी अँक में जन्म दिया है जो शक्ति में दानवी से भी अधिक छिछरछर है शक्तिवान है और मोन्दर्य में देवताओं से भी अगुणीय है -

“यह ज्योतिर्मय रूप । प्रकृति ने किसी कबक पर्वत से ,  
काट पुष्प-पुलिमा विराट निज मन के आकारों की ,  
महाप्राण से भर उसको , फिर ध्रु पर गिरा दिया है ;  
स्यास स्वर्ग की सुन्दरियाँ, परियाँ को सलवाने की ।”

कवि सज्जन्या के शब्दों में कहता है - राजा पुरुरवा का वाह्य मोन्दर्य देवों के मोन्दर्य से भी बेहतर और आकर्षक है -

और परम सुन्दर भी ।

ऐसा मनोमग्नकारी तो होता नहीं उमर भी ।<sup>2</sup>

तृतीय अंक में पुरुरवा के वाह्य मोन्दर्य का वर्णन अत्यन्त उत्कृष्ट ढंग से किया गया है । पुरुरवा के मस्तक पर सूर्य का सा तेज प्रकटता है इनका शारीरिक गठन अत्यन्त सुन्दर है । इनकी भुजा और कक्षस्थल पर्वत की शिखारों के समान दृढ़ है उन भुजाओं में इतना बल है कि बनाधिराज भी उनका सामना करने में भय मानता है । पुरुरवा की गति का वर्णन करते हुए कवि उसमें पवन, गरुण की गति का आरोप करता हुआ कहता है कि उनके सम्मेलन पर्वत भी हिमने मगते हैं -

1-दिनकर : उत्तरी [तृतीय अंक] पृ० 72

2- " " " [पथम अंक] पृष्ठ 13

“यह शिखा सा का यह चट्टान सी मेरी भुजाएँ  
सूर्य के आगों से दीपित समुन्मत्त भाव ।”

उत्तरी में कवि ने राजा पुरुरवा के वाह्य सौन्दर्य का वर्णन अधिक नहीं किया है क्यों कि उनकी दृष्टि आन्तरिक सौन्दर्य की ओर ही अधिक रही है।

पुरुरवा के अतिरिक्त पुरुष पात्रों में महर्षि ज्यवन का स्थान है। महर्षि ज्यवन कपोतदः तपस्वी है। ये बड़े कुँछी स्वभाव के व्यक्ति हैं। एक बार वे जून में तपस्या कर रहे थे कि राज कুমारी मुकुन्दा ने उनकी तपस्या को भंग कर दिया। इस पर मुकुन्दा को भगवान् कि तभी क्षिति अपनी कुँछाग्नि में मुझे भस्म न कर दें। लेकिन मुकुन्दा को देखते ही उनका कुँछीरूप ही सौन्दर्य युक्त मधुर ज्योति में परिणत हो जाता है। उनके रूप सौन्दर्य का वर्णन यहाँ दृष्टव्य है। पाञ्चाज के उर में भी जल श्रुति प्रवाहित होते रहते हैं—महर्षि ज्यवन के मुख पर मुकुन्दा की देखते ही शोभा की किरण प्रस्फुटित हो गयीं ज्यों ज्यों रत्नमयी भी शीतल मधु धार लपाने लगी। महर्षि ज्यवन के मुख का सौन्दर्य ऐसा प्रतीत होने लगा मानो कुँछ रूपी अग्नि प्रेम रूपी मेहती में परिवर्तित हो गयी हो।

तल्लज पायक क्षिति के नयनों का  
परिणत होने लगा स्तब्ध शीतल मधु की ज्वाला में,  
माना मुदित जल-ज्वाल जातक में बदल रहा है।  
सहसा फूट पड़ी स्मृति की आभा क्षिति के आगन पर।<sup>2</sup>

इन उपर्युक्त पंक्तियों में महर्षि ज्यवन के वाह्य सौन्दर्य के वर्णन होते हैं।

1-दिनकर : उत्तरी [सूतीय अंक] ,पृ० 51

2- " " " [सूतीय अंक] ,पृ० 106

तपस्वियों का बाह्य सौन्दर्य इतना प्रभावक नहीं होता जितना कि  
अन्तः सौन्दर्य

सही में कहा जा सकता है दिनकर ने उर्वशी में पुरुष के बाह्य  
सौन्दर्य को अल्प मात्रा में ही वर्णित किया है उसकी दृष्टि नारी  
सौन्दर्य में ही अधिक रमी है। फिर भी जिसमा भी बाह्य सौन्दर्य  
वर्णन होवह उत्तम कोटिका माना जा सकता है।

अन्तः सौन्दर्य - 'पुरुषा' :-

दिनकर ने उर्वशी में पुरुष सौन्दर्य के द्वितीय अंक अन्तः सौन्दर्य की छत्र  
अवतारण बड़े उत्कृष्ट ढंग से की है। कबि ने राजा पुरुष एवं महर्षि  
अथर्व के अन्तः सौन्दर्य चित्रण हेतु उनकी विद्यमान गुण एवं कार्य व्यपारों  
को अपना आधार बनाया है।

राजा पुरुष की जिसनी ब्राह्मण्यवृत्ति आकर्षक थी उसमें भी अधिक  
वे अपने आन्तरिक गुणों के कारण सौन्दर्य सम्पन्न प्राणी है। इसीलिए उनका  
सौन्दर्य देखने वाले मनों को वरवरा ही अपनी ओर आकर्षित करने लगता  
है।

दिनकर ने द्वितीय अंक में निपुणिका के शब्दों में राजा पुरुष  
के अन्तः सौन्दर्य का वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से कराया है - राजा  
पुरुष की रत्नत्व में कर्तव्य के समान है बुद्धिमानी में उनकी तुलना  
देव गुरु वृहस्पति से की जा सकती पुरुष में गुरु के समान तेज विद्यमान  
है और देवेन्दु जैसे पुतापी है साथ ही साथ इन पति कुंठ के समान  
अनाहय है त्यागियों में भी उनकी तुलना कौरवों से की जा सकती है।  
कीमत्ता, दयालुता एवं अनुरागी मन भी उनमें विशिष्ट प्रकार का है -

कार्तिकेय सम मूर, देवताओं के गुरु सम राजा,

रवि सम तेजवन्त, मुरपति के सदृश पुतापी मानी,

धनद सदृश सौगन्धी, धर्मोपलब्ध मुक्त जन्मद निध तयागी,  
कुसुम सदृश मधुमय, मनोहर, सुसमायुध से अनुरागी ।<sup>1</sup>

दिनकर शक्ति में सौन्दर्य की स्थापना करते हैं। शक्ति अपने आप में एक आन्तरिक गुण है। हमीनिष्ठ राजा पुरता में भी यह गुण विद्यमान है। राजा पुरता किसी को दुखी नहीं देख सकते क्योंकि राजा पुजा का रक्त होता है। शक्ति के साथ-साथ उनके हरित्र में दया एवं तिर्यक तथा शील का गुण पूर्ण रूपेण विद्यमान है। उत्तरी काव्य के प्रथम अंक में जब मर्ग की अप्रसर उत्तरी की केशी नामक दैत्य अपहरण र ने जा रहा था। ऐसा करने पर उत्तरी के मुख से निकली कण्ठा मिश्रित आनाज राजा पुरता की कर्णोच्चर हुई। राजा सुरम्भ उत्तरी की रक्षा हेतु दौड़ पड़े और अपने भुजबल एवं पराक्रम से उत्तरी की रक्षा कर उसे दैत्य से मुक्त किया। राजा पुरता के इस अवसर पर दया एवं शक्ति दोनों में वृत्तः सौन्दर्य की आभा परिलक्षित होती है -

दौड़ पड़े वे सदय उत्तरी की अविलम्ब बचाने।

और उन्हीं नर वीर नृपति के योग्य से भुजबल से,

मुक्त हुई उत्तरी हमारी उमदिन काल काल से।<sup>2</sup>

जिस प्रकार पुरता के वृत्तः सौन्दर्य की वृद्धि वीरता दया, तिर्यक आदि भावों से होती है उसी प्रकार पुरता में प्रेम भाव भी पूर्ण रूप से विद्यमान है। क्योंकि प्रेम आत्मा का गुण है जो प्रत्येक जीव-मात्र में पाया जाता है कोई भी इससे अलग नहीं रह सकता है -

"प्रेम तो वह तूफान है जो मानव मात्र में सहज रूप में रहती है जिस प्रकार जीने के लिए भोजन पानी वायु एवं आच्छादक है वीर उसी प्रकार प्रेम की

1-दिनकर : उत्तरी [द्वितीय अंक], पृ० 34

2- " " " [प्रथम अंक], पृ० 12



आकांक्षा भी आवश्यक है। पशुका प्रेम शायद तब तक सीमित होता है जब कि मानव का प्रेम सौन्दर्यानुभूति से अनुप्राणित होने के कारण आकर्षक और अज्ञात लूना के रूप में व्यक्त होता है। प्रेम का पुरस्कार आकर्षण से होता है।<sup>1</sup>

प्रेम का प्रत्येक मानव जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। कोई मानव हमारे अभाव में जीवन-यापन सम्भवतः नहीं कर सकता है यह अपने कई रूपों में व्याप्त होता है उसकी [प्रेम] महत्ता की उचित दिनांक में उत्तरी की भूमिका में व्यक्त किया है—“नारीनरको लूकर लूप्स नहीं होती, न नर नारी के आत्मिक में सम्पूर्ण मान्यता है। कोई शक्ति ऐसी नारी को नर तथा नर की नारी से अलग नहीं रहने देती, जब वे मिल जाते हैं तब भी उनके भीतर किसी ऐसी लूना का संसार करता है जिसकी लूप्स शरीर के धरातल पर अनुपम है।<sup>2</sup>

उपर्युक्त प्रेमभाव के परिप्लव में दिनांक में पुरुषा में भी प्रेम भाव का पूर्ण समावेश परिलक्षित किया है। पुरुषा का प्रेम प्रथम तो उत्तरी के प्रति है वह पहले उसके वाह्य सौन्दर्य पर विमोहित होता है और उसी प्रेम करने लगता है। उत्तरी में पुरुषा की प्रेम विह्वल दशाओं का चित्रण, उसके विमोह में मिलने की आकांक्षा एवं संयोग में, प्रेम के आदान-प्रदान में सौन्दर्य के कुन्तः सौन्दर्य के दर्शन होती है निपुणिका के शब्दों में पुरुषा के प्रथम व्यापार का चित्र दृष्टव्य है -

महाराज ने देख उत्तरी को लड़ीर अकुला कर,

बाड़ी में भर लिया दौठ गोदी में उसे उठाकर।<sup>3</sup>

पुरुषा के हृदय में आत्मनः भावना लड़ी प्रत्यक्ष है। वे चाहते हैं कि मुझे भी पुरुषत्व प्राप्त हो। इसके अभाव में उनकी अन्तर्दृष्टि निम्न

1- डा० रीकर चन्द्र जैन : राष्ट्रीय कवि दिनांक और उनकी काव्य कथा,

2- दिनांक : उत्तरी [भूमिका], पृ० 8

3- " " " [द्वितीय अंक], पृ० 29

निम्नलिखित पंक्तियों में दुष्टत्व है- उह जोशीनरी को गन्धमादन पत्नी से भेजे गये सन्देश में -

बहुत मग्न अतिशय प्रसन्न हूँ मैं तो इस गधुवन में,  
किन्तु यहाँ भी कमक रही है तही तेदना मन में ।  
प्रतिष्ठानपुर में भू का स्वर्गीय तेज जगता है,  
एक बेशर विना, किन्तु सब कु सुना लगता है ।  
पुत्र! पुत्र! अपने गृह में क्या दीपक नहीं जनेगा ।  
देवि! दिव्य यह ऐल तू । क्या आगे नहीं कौगा ।<sup>1</sup>

इन पंक्तियों में राजा पुरवा की अन्तर्व्यथा को कवि दिनकर ने तही गम्भीरता के साथ सौन्दर्य पूर्ण ढंग से वर्णित किया है । पंचम अंक में सुकन्या जब उत्तरी-पुरवा पुत्र बायू को राजा के दरबार में पहुँचाने आती है और राजा को जब यह बात होता है कि यह गैरा ही पुत्र है तो उनकी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं रहती । वे उस समय पुत्र प्रेम में इतने विह्वल हो जाते हैं कि अपना सर्वस्व लुटा देने की घोषणा करने लगते हैं। पुरवा के इस वात्सल्य भाव-प्रेम आन्तरिक सौन्दर्य के दर्शन किये जा सकते हैं -

पुत्र! उर में पुत्रवान हूँ घोषित करी नगर में,  
जहाँ ही जहाँ तही से मेरे निकट उसे आने दो ।  
द्वारा खोल दो कीच-भवन का कह दो गौरवों से,  
जितना भी चाहें सुवर्ण बाँट ले जा सकते हैं ।<sup>2</sup>

कवि दिनकर ने पुरवा के पितृ हृदय का समस्त मत्सर्य कातरता, अर्थ एवं हर्ष उनकी इस मार्मिक उक्ति में ललका दिया है जिससे उनके हम पुत्र प्रेम के भाव में सन्तुष्ट अन्तः सौन्दर्य की कसक मिलती है -

1-दिनकर : उत्तरी {द्वितीय अंक}, पृ० 37

2- " " " {पंचम अंक} , पृ० 135

प्राणी के आत्मिक हाथ जब तक कहाँ छिपे थे ।

साजों मेरा धनुष यहीं से तान साध अम्बर में  
जमी दोस्ताजों के तन में जाग लगा देता हूँ ।

उठी बजाजी पटह युद्ध है, कदाही पौरखनी से  
उनका प्रिय सम्राट स्वर्ग से बोर ठाम निकला है ।<sup>2</sup>

पुरुषों में स्वाभिमान भी अविनाशित है वे अपमान से मृत्यु को केँठ समझते हैं-उत्तरी को उनके पुष्प पाश में विद्युत्त करके इन्द्र ने जो उनका अपमान किया है उसका प्रतिकार ही अवश्य लेना चाहते हैं नहीं तो -

• यह अपमान असह्य इसे सहनैये केबल मरण है - 3

परन्तु वे उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त विनम्र, हृदा भाव भी रखते

१-दिग्गज : उत्तरी { पश्चिम तर्क } , पृ० १३६

2- " " " " " 1.70 139

3- . . . 1 - 7 , 90 141

विद्यमान है जो उनके चरित्र की प्रकाशित करते हैं। स्त्रीयों का मत है कि उत्तरी में राजा पुरुवा के ब्राह्मण एवं अन्तः सामन्तों का निष्पन्न बड़े उत्कृष्ट ढंग से हुआ है।

पुरुष पात्रों में दूसरे महर्षि ज्ञान के अन्तः सौन्दर्य का वर्णन भी उर्वशी में सही सजीवता से किया गया है। महर्षि ज्ञान के तपस्वी के सभी गुण विद्यमान होते भी उनके अन्दर वात्सल्य तथा श्लाघा भी मिलते हैं। महर्षि ज्ञान आश्रम जब उर्वशी पुनर्गठन करने की आती है तब से उर्वशी की अत्यन्त श्लाघा व कृपा पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। सुकन्या के शब्दों में इसी के यह भाव -

जब उत्तरी यहाँ जायी थी पुत्रपुत्र करने की,  
शुचि ने देखा था उसकी, क्या कह कि किम प्रमत्ता से .

और नारियाँ में भी शलध, गर्भिणी मत्स्यजीवा की,  
देख मझे सम्मान पूर्ण करण सी हो जाती है ।

किसनी विषा, किन्तु किसनी लोकोत्तर वह लगती है।

महिष में मैं बच्चों के प्रति भी बड़ी साहजिकता एवं प्रेम हूँ। मैं बच्चों को साक्षात् वरम ही मानती हूँ -

सूत्रे सदा शिवा के स्वरूप में हीतर ही आते हैं ।<sup>2</sup>

महर्षि उर्वशी के पुत्र आयु की जड़ी स्नेह भरी दृष्टि से निहारते हैं तथा वात्सल्य य प्रेम के कारण ही उसका पालन-पोषण करते हैं। उनके इस वात्सल्य य मयी भाव एवं कृपामय प्रेम सान्द्र्य के दर्शन होते हैं।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि उत्तरी में कति दिनकर ने गुण सौन्दर्य का वर्णन राजा पुरवा एवं महर्षि ज्यवन के ताह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य का कुमशः ब्रह्माकृति और आन्तरिक गुणों के आधार बढी सजीवता से किया है। महर्षि ज्यवन का गुण सौन्दर्य वर्णन प्रामाणिक रूप में पुरुष सौन्दर्य को दिगुणित करता है।

१-दिपकर : उत्तरी । चतुर्थ अंक । पृ० ११०

2- " " " " " ,90 112

### नारी सौन्दर्य :-

नारी का सौन्दर्य सृष्टि के आदिकाल से मानव की सौन्दर्यानुभूति का का केन्द्र रहा है। ऋग्वेदः सृष्टि के विकास के मूल में नारी ही है। तत्त्विय के इतिहास में भी आदिकाल से लेकर अथर्वन कवि की प्रेरणा नारी ही रही है। वेदिक काल में वह मंगलमयी उषा जुहारी जिन्हीं नारी के रूप में प्रगट हुई है। संस्कृत काल में कालिदासकी कला के क्षीपक में वह बाह्य अंगों के सौन्दर्य अत्यन्त मार्मिक ढंग से करते हैं- उन्हीं के कपील सस्तिमा से युक्त हैं, कंधरी की मुकुलत जुही के पुष्प स्रग् कुन्दकली लक्ष्मी है। उसका गौर वर्ण क्षीर पुष्पी के अभुषणी से अनुपम शीघ्र युक्त है। उन्हीं अक्षय में रत्न की प्रतिमा के समान प्रतहत हो रही है।

इन कर्पूरी की लक्ष्मी देखते हो

ओर कंधरी की हंसी यह कुन्द-ली, जुही कती ली ?

गौर रश्मि यष्टि-ली यह देह क्षय पुष्पाभरण से

रत्न की प्रतिमा कला के लज्जित रत्न की प्रतिमा कला के रत्न-जाले में कती ली ?<sup>1</sup>

उन्हीं जब अपने गौरांग- पर पतले बीने रत्न धारण करती है तब उन पार दली वस्त्री से उसके अंग- प्रत्येक दिखार दे जाते हैं जो रत्न के कपी के समान सरस उज्ज्वल स्रग् पुष्प के समान कीमलता की धारण किये हुए हैं। वे इस प्रकार झिल-झिल रहे थे कि मानी रत्न ही किसी तात्काल के जल में से अभी - अभी कल झिलका ( प्रकटित ) होकर शीघ्र प्राप्त कर रहा है-

कुसुम कलिका में प्रदीप्त आभा जलता मय मन की ।

बसक रही थी न-न कान्ति उसनी से बसकर मन की ।

हिमकण झिल कुसुम सम उज्ज्वल अंग-अंग झल-झल था

मानी अभी- अभी जल से निकला उपलब्ध कमल था ।<sup>2</sup>

1- दिनकर : उन्हीं ( तृतीय अंक ) पृ० 48

2- दिनकर : उन्हीं ( द्वितीय अंक ) पृ० 28

कवि उर्झी के नयनी की व्योमि एवं पलकी के शिखर में वर्णन करता हुआ उनकी मोहकता की चित्रित करता है -

किन्नी साँझ कम के सम्मान नयनी की व्योमि बरी थी ,  
कली-कली पलकी के नीचे निहा भरी भरी थी ।  
झग-झग में सहर साँझ की राग जगाने वाली ।<sup>†</sup>

कवि ने सुतीय अंक में उर्झी के बाह्य सौन्दर्य वर्णन में प्राचीन काल के कल ने चली आ रही नव-शिल्प वर्णन परम्परा का पालन करते हुए सौन्दर्य की बाँकी प्रस्तुत की है- उर्झी के नयनी की निर्मलता, कली की रसिमा क्रमशः अकार के दर्पण एवं उभा की सल्लिमा के सम्मान है। जिस प्रकार मूली की टहनियों पर नवीन कौमल दस शोभा प्राप्त करते हैं उसी प्रकार उर्झी के अन्त-भूट जुद्धर सग रहे हैं। जुद्धर- कुंठर भुजंग गोरक्ष पर इस प्रकार रमणीयता की प्राप्ति कर रही है मानी की दीप्ति पैसा रही है तो दूसरी ओर उसके हृदय में भी जुद्धर भास्वती का सागर सहरा रहा है। और गम्भीर कल की नारी के चरम स्वरूप और पत्नी एवं और भगिनी का ही है। ऐतिहासिक नारी प्रेमा और शिवाय में ठूठी हुई कोमलागिनी है। आधुनिक कवि 'दिनकर' भी समस्त सृष्टि का सौन्दर्य नारी की चेतना में अवलोकित करते हैं ।

‘ उर्झी ’ में उर्झी, ओरीनरी, कुम्पा का ही प्रमुख रूप से सौन्दर्य चित्रण किया गया है। उर्झी इस कृति की नायिका है जिसका सौन्दर्य अनिर्वचनीय है क्योंकि उस जैसा सौन्दर्य पुन- पुनर और गन्धर्वलोक में भी नहीं मिलता-

† दिनकर : उर्झी ( प्रथम अंक ) पृष्ठ 13

यह रहस्य मय रूप कहीं विभूतन में जोर नहीं दे  
सुर जिनार गन्धर्व लोक में अथवा मर्यभन्म में ।<sup>1</sup>

**बाह्य सौन्दर्य : नारी :-**  
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

‘उर्झी’ में नारी के बाह्य सौन्दर्य का विस्मय नारी के मोक्ष रूप के द्वारा किया गया है। उर्झी के बाह्य सौन्दर्य की कवि विश्व कल्पनाओं, उपमाओं द्वारा प्रस्तुत करता है।

उर्झी देशीय की अन्तरा है वह परम सौन्दर्य-वती है उसका सौन्दर्य इतना आकर्षक है कि जड़ वस्तु सभी उसे देखकर मुँह ही जाती है उसके रूप की देखकर मुनि एवं तपस्वी तथा कामजित भी विवर्णित हो जाते हैं। उर्झी स्वर्ण का कमनीय कुसुम है। सौन्दर्य ने यह साक्षात् उल्लेख कामदेव एवं विष्णु भगवान की पत्नी की प्रतिमूर्ति है। इस वृत्ति के प्रथम अंक में उर्झी के अद्वितीय सौन्दर्य का वर्णन कवि ने सरलभाषा के शब्दों में इस प्रकार किया है —

इसी लिए तो सभी उर्झी, उभा नन्दन मन की  
पुल पुल की कोमुली कलित कामना इन्द्र के धन की  
सिद्ध विराणी की सम्पत्ति में आग जलाने गली

x      x      x      x      x      x      x

रवि की मूर्ति रमा की प्रतिमा तुम्हा शिष्य मर की  
शिशु की प्रणयरणी, आरती- सिद्ध काम कर की ।<sup>2</sup>

1- दिग्दर्शक : उर्झी ( तृतीय अंक ) पृष्ठ 88

2- दिग्दर्शक : उर्झी ( प्रथम अंक ) पृष्ठ 13

उरुशी के बाह्य रूप सौन्दर्य की बाँकी राजा पुरुरवा के कन्दों में भी द्रष्टव्य है। राजा पुरुरवा उरुशी के अनुपम सौन्दर्य की अभिव्यक्ति चन्द्रमा की बाँदनी में विधीर्ण होती हुई उरुशी किरणों। ऐसी ही चिन्ता वाली सौन्दर्य पूर्ण उरुशी का अश्वत्थ फूटी के सब सतखी से जने हुए कुंज के समान लीनयमान है। ऐसी कुंज सदृश अश्वत्थ भूमि मानव मात्र की नव जीवन प्रदान करने वाला है—

ये लीवन, जो किसी अन्य जग के नभ के दर्पण के,  
ये कपील, जिनकी द्युति में लहरती किरण उभा की,  
ये विस्तृत से अहं, नवता जिस पर सूर्य मदन है,

x      x      x      x      x      x      x

ये बाँहें, जिन्हें प्रकाश की दो नवीन किरणों- ली,  
जोर आ के कुसुम-कुंज सुरगित त्रिचम-छवि भवन के,  
जहाँ मृग्य के पथिक ठहर कर शान्ति दूर करते हैं।<sup>1</sup>

इस तरह उरुशी के मौलिक सौन्दर्य के अनेक चित्र हम कृति में देखे जा सकते हैं। उरुशी का बाह्य सौन्दर्य ही यह तत्व है जो राजा के दृष्टिक-प्रक्षेप मन का शमन करता है।

रानी जोशीनरी पुरुरवा की विराहिता है जिसमें कि एक भारतीय नारी के सभी गुण सिद्धमान हैं। वह आधुनिक नारियों की सभी न आकर प्राचीन भारतीय नारियों का प्रतिनिधित्व करती है। जोशीनरी में रूप माधुर्य की ( बाह्य सौन्दर्य ) की दृष्टि से सौन्दर्य का सर्वोत्कृष्ट अवलोकन किया जाये तो यह उरुशी में निज कीट में है। कवि ने ( ' उरुशी ' कव्य में रानी जोशीनरी के बाह्य सौन्दर्य का वर्णन सम्पन्न नहीं किया है।<sup>2</sup> क्योंकि वे ( जोशीनरी ) बाह्य सौन्दर्य के अभाव में अपने प्रिय-तम की अपनी ओर आकृष्ट करने में असमर्थ रही है। जोशीनरी चन्द्र जैन के कन्दों में — ' ' जहाँ बाह्य सौन्दर्य की स्थूलता होती है वहाँ नारी पुत्थ



का सर्वत्र प्राप्त नहीं कर पाते और यही कमी उसके जीवन की दुखी बना देती है। ओशीनरी में अन्त में यही वेदना उभरती है कि वह बाह्य सौन्दर्य ने पुरस्कार की आकर्षित नहीं कर सकी। फलतः अन्तर्गत सर्वत्र प्राप्त कर लेती है और मुक्तप्रवृत्ति सर्वत्र जो बेठती है।<sup>1</sup> 2 तभी ओशीनरी के बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा कवि ने उसी अन्तःसौन्दर्य का विस्मय वस्तु कृति में बड़े उत्कृष्ट ढंग से किया है। ओशीनरी के पश्चात् सुकन्या के बाह्य सौन्दर्य अर्थात् जीवन में कवि 'दिनकर' ने अपनी सौन्दर्यमयी दृष्टि का परिचय दिया है। राजपुत्र सुकन्या यौवन सम्पन्न युवति है। उसी शरीर से सौन्दर्य की प्रतीति चारी और स्थिर हो रही है। जानन या तात्पर्यना अन्तर्गत रही है। उसकी मेरी भविष्यता ऐसी सुन्दर है जिस पर कि महर्षि अन्तर्गत हास्य हो जाते हैं -

पट संपास-का अभी देखने लगी बंक लोचन से  
अब जाने क्या भाव कुलगत है महर्षि के मुख पर <sup>2</sup>

महर्षि अन्तर्गत सुकन्या के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा करते हैं -

कहाँ मिला यह रूप, देखते ही जिसकी पाश की  
दाहकता मिट गयी, ध्यापु में फल निकल रहे है।<sup>3</sup>

सुकन्या का स्वरूप ही महर्षि अन्तर्गत के कृष्ण की प्रेम में परिवर्तन करता है। नारी के यही मौल्य सौन्दर्य यौग्य की त्याग से भीम की ओर उन्मुख करता है। 610 जैन के शब्दों में 'नारी का सौन्दर्य देखकर सुकन्या उसी मंदिरा, माधुर्य, अमृत एवं सिद्धि में उज्ज्वल किन-किन तन्त्रों की दृष्टि से लगता है।'<sup>4</sup>

1- 610 शेषर वन्द जैन : राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी कविता पृष्ठ 170

2- दिनकर : उर्वशी ( चतुर्थ अंक ) पृष्ठ 106

3- दिनकर : उर्वशी ( चतुर्थ अंक ) पृष्ठ 107

4- 610 शेषर वन्द जैन : राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी कविता पृष्ठ 170

बाह्य सौन्दर्य की भांति रात्र उससे भी अधिक अतिरिक्त सौन्दर्य मानव के चरित्र का उद्घाटन करता है। उर्शी जिसका रूप आकर्षण का केन्द्र है वह भी प्रेम कीभूत ही पुरस्कार मय बन जाती है तब उसका अतिरिक्त गुणों का उत्थान करते हुये अन्तः सौन्दर्य की बड़े मार्मिक ढंग से की है। इस कृति में कवि ने उर्शी की आधुनिक नारी, प्रेयसी एवं समतामयी मां के रूप में चित्रित किया है। किन्तु उसका सौन्दर्य समतामयी मां के रूप में अधिक मनोरम दिखाई पड़ता है।

प्रेम मानव मन की चिर आकांक्षा है। उन्हीं के मन में भी यह भावना जागृत होती है स्वर्ग लोक से कृपु लोक में अवतरित हो जुड़- है। वह प्रेम के कारण ही राजा पुराण के नितिन के लिये व्याकुल होती है। प्रेम भावना की उच्चकृततम रूप चित्र लेखा के शब्दों में -

नृप पुराण से मिलने की तरह अत्यंत श्रद्धा थी ।

तो शरीर की ढीठ परत में निश्चय मिल जायेंगी ।'

उन्हीं की यह प्रेम भावना कामभावना मानी जा सकती है। क्योंकि उसे कामभावना इतनी पीड़ित कर रही है कि स्वर्ग की व्यर्थ और मृत्युलोक की सर्वथा सम्भ्रम है कि स्वर्ग की ओर से उसे दुःख ही दुःख परिचित हो रहे है। प्रेम के कारण उन्हीं की दशा कब खोजनी हो गयी है।<sup>2</sup>

[illegible]

1- दिनकर : उन्नीस ( प्रथम अंक ) पृ० 20

2- गरी : गरी : पृ 14 , 20

उन्नी में अपने प्रिय के लिए जितनी प्रेम भावना थी वही बीरेन्द्रो  
उसके फनी रूप में परिवर्तित होकर और एक विशु को जन्म देकर फकीय प्रेम  
में परिवर्तित हो जाती है। जहां आकर उसके अतिरिक्त सौन्दर्य की पूर्णता लभित  
होती है।

उन्नी में वे सभी गुण विद्यमान हैं जो एक शक्तिमयी माँ के अन्तःकरण  
में होने चाहिए। उसी ये भाव ही अतिरिक्त सौन्दर्य के दायक हैं शक्तिमयी  
माँ का रूप निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

अरी जुड़ना क्या इसकी लादे इस हृदय कुसुम की  
लगा का मे स्वयं प्राण तक शीतल हो जाती हूं ।<sup>1</sup>

उन्नी केन तो देख लौक की अपारा है। उसमें भी ठीक उसी तरह के  
भाव जागृत होते हैं जिस प्रकार के प्रत्येक मातृ हृदय में होते हैं। वह अपने  
नन्हें मुनि नन्ही के केलि-क्रीड़ाओं, तथा माधुरी की देकर मन ही मन तुझ का  
अनुभव करती है। उसी प्रकार उन्नी आयु की बीटी-बीटी जंझों से सहज भाव  
एवं भीतिपन से किसी जिज्ञासा के कारण अर्थात् स्तुष्टि के साथ जब किसी की देखता  
है उसका समय वह समाप्त देखा प्रतीत होता है। इसके ऐसे कल सौन्दर्य की  
देखकर उन्नी का अन्तःकरण हर्ष में व्यथित हो जाता है। कवि दिग्गज उन्नी  
के इसी भाव में सौन्दर्यावलीकन करता है -

अरी देखती नहीं लाल की नन्ही सी आँखों में ,  
अब भी तो पुष्पष्ट रज्ज के सपने बसक रहे हैं ।  
दुकुर, दुकुर अस्तुष्ट भाव से कैसे ताक रहा है ?  
मानो ही सर्वत्र सर्वदली समर्थ देखो - ज ।<sup>2</sup>

1- दिग्गज : उन्नी ( चतुर्थ अंक) पृ० 114

2- दिग्गज : उन्नी ( चतुर्थ अंक) पृ० 114, 14, 15

उपर्युक्त ज्ञान से ज्ञात होता है कि पहले उर्शी अक्षरा के रूप में चित्रित की गयी थी तदोपरान्त यह पत्नी रूप में । इस पत्नी रूप में ही उसके सौन्दर्य का निर्धारण माना जा सकता है। उर्शी के त्याग एवं समर्पण भाव भी अन्तः सौन्दर्य के द्योतक है।

उर्शी के पचास रानी ओशीनरी के अन्तः सौन्दर्य विषय में कवि की सफलता मिली है। ओशीनरी आदर्श नारी है। पति की उचित-अनुचित आज्ञा की सिरोधार्य करते हुए सर्व पति का भला चाहती रहती है। इस कृति में ओशीनरी का पतिकृतज्ञ स्त्री, और शक्तिशाली स्त्री रूप में जो विस्मय कवि ने किया है वह कला, दयः एवं सौन्दर्यभाव से पूर्ण है। ओशीनरी में कला, विरह रंजना एवं छोटे पातिकाय तथा कर्तव्यमयी स्त्री के रूप में ही सच्चा सौन्दर्य प्रतिष्ठित हुआ है। द्वितीय अंक में ओशीनरी की मृत होती ही कि राजा को उर्शी ने अपने श्रा में कर लिया है, वह कड़ी दुःखी होती है। वे उर्शी को गणिका, गणिनी कहकर अपने रंजना भाव की अभिव्यक्ति करती है। इस रंजना भाव की अभिव्यक्ति कवि ने कितने सुंदर ढंग से की है -

जाने इस गणिका का मैंने कब क्या अहित किया था,

जीन ले गयी अदयम पापिनी मुझसे मेरी पति की ।

x      x      x      x      x      ^

जल पकती फिरती अपने रूप और यौवन का

पुष्पी की ते मोद, प्राण ते श्रुषी के लते है।<sup>1</sup>

इन पंक्तियों में रानी ओशीनरी की अन्तर्यामिणी प्रगट होती है ओशीनरी की अन्तर्द्वेषना के दर्शन अन्य श्रुति पर भी किये जा सकते हैं। उसमें द्वेषना के साथ

---

1- दिनकर : उर्शी ( द्वितीय अंक) पृ० 31

त्याग एवं समर्पण भाव भी प्रधान है वह अपने पति के लिए सब कुछ समर्पण कर चुकी है। उन्हीं के शब्दों में —

जरी, कौन है कस्य, जिसे मैं अब तक का न सकी हूँ ?  
 कौन पुत्र है, जिसे प्रणय भेदी गर धर न सकी हूँ ?  
 प्रभु की दिया नहीं, ऐसा तो पास न कोई धन है।  
 श्योक्तर आराध्य-बाण पर सरिशतन-ह मन-जीवन है।<sup>1</sup>

किन्तु इतने पर भी वह व्युत्पन्न है वही श्रिय जाती है कि मेरे स्वामी के दुःख-दर्द मेरे भाग्य में लिख दी और उनका ( स्वामी ) का जीवन सर्वत्र सुखमय रहे ।

तब भी मार्ग अनुकूल ही, मुझकी मिली जो सुल ही,  
 प्रियतम जहां भी हो जिसे सर्वत्र पथ में फल ही ।<sup>2</sup>

यहां पर जोशीनारी का अदरानारी का रूप प्रगट है।

जोशीनारी की अजीवन पुत्र प्राप्ति की कामना रहती रही । व पति प्रेम से वंचित होने के कारण यह आलोकना-पूर्ण न हो सकी और उनकी कीमत सुनी ही रह जाती है किन्तु उनके अन्तःकरण में शक्तिय प्रेम पूर्णरूपेण परिण्यन्ति है। उनका यह शक्तिय प्रेम उन्हीं के पुत्र आयु की देखकर उमड़ फूटता है। वे आयु किसी अन्य स्त्री की कल्पना नहीं सम्मती। इसीलिए तो राजा पुरराज के मन में पर आयु से कहती है— ' ' ३८.३ तुम्हें किसी प्रकार का खेताप नहीं होगा श्योंकि तुम्हारी माता ( श्रम्य की ) तुम्हारे सम्म बहुत अच्छी है जो तमने समय से ममक

1- दिन्कर : उन्हीं ( दिक्तीय अंक ) पृ० 34, 35, 33, 38

2- दिन्कर : उन्हीं ( दिक्तीय अंक ) पृ० 38, 151

से आपुरित है-

पितामये मम, किन्तु माता तो यहाँ कहीं है,  
 भैया ! जब भी तो अनाथ माना-नाथ नहीं होती का,  
 तुझे प्यास जैसा सुखा की, मे भी उसी अमृत से  
 बिना लुटाये कौन हाथ ! आजीवन भरी रही हूँ ।<sup>1</sup>

यद्यपि वह आयु की जन्म दात्री नहीं है तथापि उसके प्रति प्रकट जहक्य  
 उसके हृदय की सुंदर भावनाओंका परिवय देता है। निर्वर्ण रूप में कहा जा  
 सकता है कि कवि ने ओशीनरी का अंतः सौंदर्य बिना उनके पातितकृत धर्म,  
 पत्नीकी प्रगुति, दया, करुणा, देवता लब्धा एवं जहक्य भाव आदि में देना है  
 यह अत्यंत प्रभावकारी है अन्य शैली पर भी इसकी झलक मिलती है।<sup>2</sup>

सौंदर्य एक ऐसा गुण है जिसका प्रारंभ आकर्षण और परिणमन प्रेम है।  
 जब व्यक्ति बाह्य धरातल की त्याग कर अंतर में प्रविष्टि प्रविष्ट होता है तब  
 सौंदर्य की उदत्ति भावनाएं उसके अंतर की भी सौंदर्य पूर्ण बना देती है। यह  
 पहले कहा जा चुका है कि सौंदर्य के उदत्ति रूप में त्याग और सम्पर्क का विशेष  
 स्थान है।

सुकुंया के अंतःसौंदर्य का छि विष्णु कवि ने ओशीनरी की भांति उसके  
 त्याग, करुणा, जहक्य एवं पति कृता के रूप में विवित किया है। सुकुंया बाह्य  
 कृति से भी सुंदर थी किन्तु उसमें अंतर्गत गुणों का भी प्राधान्य था अन्य उन्नी के  
 शब्दी में --

पर अदृश्य जो दीप्त पड़े थे गहन गूढ़ मन्दिर में,  
 उनका उद्दिन गान किसी ने नहीं कभी गाया था ।<sup>3</sup>

- 
- 1- दिनकर : उशी ( पंचम अंक ) पृ० 147, 48  
 2- दिनकर : उशी : उशी : पृ० 147, 148, 150, 153  
 3- दिनकर : उशी : उशी : पृ० 103

ओशीनरी की तरह सुकन्या में भी पातिहस्य देखा गया है। सुकन्या उन्हीं नवयुवति है, मर्यापि न्यून नृप है किन्तु उसके लिए सब-कुछ अपने बन्धु तपस्वि ही है। उन्हीं की आराध्य देव मानती है तथा गर-पुत्र गमन की निषिद्ध बताती है। इस स्वरूप में भारतीय वैदिक संस्कृति की पूर्ण प्रस्थापना हुई है जो उसके अन्तः सौन्दर्य की द्योतक है—

एक बारिणी में क्या जानुं स्वयं विश्व भोगी का  
मेरी तो आनन्द धाम केसु मर्यापि भर्ता है  
गृहणी के तो परम देव आराध्य एक होते है।<sup>1</sup>

सुकन्या का अन्तःसौन्दर्य उसकी कर्तव्य निष्ठता में है। यह उन्हीं की सखी है एक ऋषिभक्त के साथ निष्ठ का प्रत्येक कर्तव्य पालन करती है। सुकन्या उन्हीं के पुत्र आयु का पालन-पोषण अत्यन्त स्नेह भाव से करती है और आयु यह अभिस नही होने देती कि यह उसकी अस्मात् माता नही है। ऐसा इसलिए है कि सुकन्या अपना सभी मर्मत्र भाव आयु के पालन-पोषण में लगा देती है। इसका अर्थ कारण यह भी माना जा सकता है कि उसके कोई अन्तान न होने के कारण यह इतना प्यार आयु की देती है। सुकन्या का यह अर्थात् प्रेम भाव ही उसका अस्तित्व सौन्दर्य है एक माता अपने लाल की विभिन्न ऐसे नाम लेकर पुकारती है जो अस्तित्व नहीं होते हैं जैसे मेरी बौना, कुंवर, कन्या आदि। ऐसा ये पुत्र प्रेम के कारण कहती है ठीक उसी प्रकार सुकन्या भी अर्थात् प्रेम से ही आश्रित होकर 'आयु' के लिए मर्यापुर्त ली दुष्ट शब्दी का प्रयोग करती है। इन शब्दी में प्यार एवं ममता भरी है जिसे सौन्दर्य के उपादान रूप में स्वीकारा जा सकता है -

तुम पर ते इस महाभूत की दृष्टि नहीं हटती है  
जो भी करे दुष्ट मुझकी अपनी मां थी मानेगा ।<sup>1</sup>

सुख्या आयु की अत्यधिक ध्यान करती है। ये आयु जो अपने मैत्री का तारा  
मानती है और जिस तरह एक माता अपने पुत्र के लिए अंतःकरण में अनेक अभिलाषा  
रखती है उसी तरह सुख्या की आयु के विषय में रखती है—

यह आत्म की ज्योति, हृदु नहीं हन पर्य-कुटी का  
जो तुम्हारा तब हमारी ज्योति का तारा है।

x x x x x x

धुटनी के बल दोड़-दोड़ मेरा मुन्ना पकड़ेगा  
कभी कुछ हरिष के कान, कभी छ ठेन कपीत केकी के

x x x x x x

जिह पत्रिह होकर महर्षि के साथ यम त्रैदी पर  
के हमारा सल मंत्र पढ़-पढ़कर धन करेगा ।<sup>2</sup>

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि सुख्या के सौंदर्य चित्रण में कवि  
ने छ उका वाहयवृत्ति की ओर कम किन्तु आन्तरिक गुणों एवं मनोवृत्तियों की ओर  
अधिक ध्यान दिया है।

1- दिग्गज : उज्ज्वली (चतुर्थ अंक) पृष्ठ 114

2- दिग्गज : यही : यही पृष्ठ 113, 114



### बाल सौन्दर्य :-

मानव सौन्दर्य के अन्तर्गत जिस प्रकार पुरुष सौन्दर्य एवं नारी सौन्दर्य का विशिष्ट स्थान है ठीक उसी तरह बाल - सौन्दर्य का भी विशेष महत्त्व है। उसमें यौवन का उभार, श्लाघनीय और उम्मादकारी अनुराग न होकर निराला सा रूप होता है। कवि शिरोमणि गुरदास ने भगवान् कृष्ण के बाल रूप का ऐसा मनीषारी वर्णन किया है जो अद्यतन हिन्दी साहित्य में उच्च स्थान का अधिकारी है। बालक की सरल, स्वाभाविक चेतना उसकी नीहारी भीली-भली भाव-मणिमण्डल कीर हृदय की भी उत्साह से भर देखी है। हिन्दी साहित्य में बाल-सौन्दर्य चित्रण की परम्परा बहुत पुरानी है। आधुनिक युग में भी बाल सौन्दर्य का वर्णन तीव्र अक्षय हुआ है किन्तु अत्यन्त मात्रा में।

'दिनकर' जीज और शौर्य के कवि हैं। स्वरूपहीन होने के नाते उनमें प्रेम और सौन्दर्य की बलक भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। विशेष कृति 'उर्वशी' में बाल-सौन्दर्य का चित्रण उसके बाह्य एवं अन्तः के रूपों में अत्यन्त सफल एवं सतत है।

### बाह्य -सौन्दर्य-बालक :-

पुराण एवं उर्वशी के पुत्र 'आयु' का जन्म महर्षि-व्यसन के आश्रम में हुआ था। 'आयु' की बाह्य आकृति बड़ी सुन्दर है जिसमें आकर्षण भरा हुआ है। राजा पुराण के शब्दों में उसकी बाह्य-आकृति का चित्रण—

उत्पत्ति परिपुष्ट, मध्यकृत, पृथुल प्रलय भुजार्थं .

अभिल उन्वित, प्रसन्न कितमा सुख्य वेत्त सगता या ,

**उपनिषद्, उदयकेल की मानी धर्म रिला हो ।**

इसके साथ-साथ पुरुराज ने आयु के भेद, पुत्र आदि के सौन्दर्य का ज्ञान दिया।

हे।<sup>2</sup> पंचम अंश में तानी औरोनरी की आयु के बाद्य छे सौन्दर्य का ज्ञान

काली है, आयु के मैत्र, मस्तक पर त्रिशूल उसकी मुद्राकृति के सौन्दर्य को दिव्यगुणित

कर रहे हैं और वे ( वायु ) इनसे अधिक स्पर्शिता की प्राप्ति कर रहा है—

‘‘कितना भयंकर नयन नाभिका, ललाटे विभुष मे

महाराज की आकृतियों का पूरा विश्व पड़ा है।<sup>3</sup>

**अन्तिः सौन्दर्य-वासकः—**

कवि ने 'उर्ला' में 'आयु' के बाह्य सौन्दर्य के साथ-साथ अतिरिक्त

सौन्दर्य का भी उद्घाटन किया है। प्रत्येक शिष्य की यह आकांक्षा होती है कि उसे

अपने माता-पिता का प्यार मिले। भारतीय संस्कृति में पला शिशु स्नेह-

## माता-पिता गुरु की बानी,

गिना गिवार करिय शुभ जानी ।<sup>4</sup>

୦- ବିଲ୍‌କୋପାୟନ

1- दिनकर : उद्देश ( पंचम अंक ), पृ० 131

2- दिनकर : उशी ( पंचम अंक ) पृ० 147

४- दिनांक : उषा ( पंचम अंक ) पृ० १५४

4-

इस उक्ति के अनुसार यह बताना करता है कि मैं अपने माता-पिता की सेवा करूँ। सांस्कृतिक दृष्टि से माता-पिता एवं गुरु की सेवा बालक का सौन्दर्य वर्धन करती है। इसी तरह 'आयुर् भी' अश्विनी' की सन्निध्या प्रदान करते हुए कहता है- 'मैंने अपने अल्प जीवन में केवल माता ही देखा है पिता का ध्यान मुझे कदापि नहीं मिला। हे माता ! मैं यहाँ राजा बाद में हूँ, आपका पुत्र पहले। अतः आपकी उद्दिष्टन नहीं होना चाहिए —

मैं बताता मत हो, भविष्य यह चाहे कहीं भिपा हो,  
मैं आया हूँ अग्रदूत बन, उनी स्वर्ग जीवन का।

x      x      x      x      x      x      x

राज मुकुट की नहीं तीसरी मांठ के ही चरणों की,  
मां ! मैं पीछे नृप, विशोर पहले तेरा बेटा हूँ ।'

इतना कह मां अश्विनी के चरणों में गिर पड़ता है। इन उपर्युक्त पंक्तियों में आयु का जो मातृभाव एवं विनम्र है उसी में उसके अंतः सौन्दर्य का रूप निभा रहा है

**उत्तरी-प्राकृतिक सौन्दर्य :-**  
 03-3333333333 : 33333333

मानव सौन्दर्य की भाँति प्राकृतिक सौन्दर्य भी मानव की ओर आकर्षित करता रहा है यह उसके अनुपम सौन्दर्य पर मुग्ध होकर असौखिक आनन्द का अनुभव करता है। काव्य की दृष्टि ने इसकी महत्ता अवर्धित है। हम प्रकृति की कला अथवा काव्य का प्रमुख प्रेरक तत्त्व कह सकते हैं। रत्नजी की तौकाव सुखन की प्रेरणा प्रकृति से ही मिली थी। 'प्रकृति के गिराव सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कवि काव्य रचना करता है, उसके सौन्दर्य की अपनी कल्पना का उर्वर और अनुभूति का विषय बनाता है। यह अनुभूति ही अभिव्यक्ति का विषय बनकर कविता का रूप धारण करती है।'

हिन्दी साहित्य में प्राकृतिक सौन्दर्य रचन की परम्परा आदि काल से चली आ रही है। आदिकाल, भक्ति काल, ऐतिहासिक एवं आधुनिक काल के कवियों ने विभिन्न स्वी में अपने काव्य में प्रकृति सौन्दर्य का रचन किया है। संस्कृत कवियों का तो यह एक प्रमुख विषय माना जा सकता है। प्राकृतिक सौन्दर्य के माध्यम से कवि अपने हृदय के भागी की अत्यन्त उत्कृष्ट ढंग से अभिव्यक्त करता है। प्रत्येक मानव के अन्तःकरण में तात्कालिक प्रकृति चिन्तन होता है। प्रकृति के प्रति प्रेम भी कुछ हनी में समाविष्ट है। इस प्रेम प्रकाशन का मूल प्रेरक प्राकृतिक सौन्दर्य माना जा सकता है। प्रकृति सौन्दर्य का रचन उसके उपलब्ध बन्ध, मन्त्र, उपाय, पृथ्वी, जल आदि के द्वारा किया जाता है। डॉ० जेन के शब्दों में 'प्रकृति के सौन्दर्य पूर्ण जगत् उन्मत्त, इन्द्र धनुष मन्त्र हमें उन्मत्त जीव का गहिरा आनन्द प्रदान कराते हैं। प्रकृति का सौन्दर्य हमारे मन पर गहिरा प्रभाव डालता है। पवन का प्रवाह, नदी की लहरें, उमड़ते बादल, मुक्त-आकाश में उड़ते चहचहाते पक्षी प्रकृति का सौन्दर्य देते हैं।'<sup>2</sup>

**प्राकृतिक-सौन्दर्य के स्रोत :-**  
 03-3333333333 : 33333333

प्रकृति के कोमल एवं मधुर भयंकर तथा कठोर दोनों स्वी में सौन्दर्य

- 1- डॉ० त्रिजयेंद्र झातकः पृ० जगन्नाथ त्रिगारी अभिनन्दन ग्रन्थ (कला और प्रकृति नामक लेख पृ० 208)
- 2- डॉ० रोमर जेन जेन राष्ट्रीय कवि दिवस और उनकी काव्य कला

दृष्टिगत होता है। यही कारण है कि सभी प्रकृति प्रेमी कवि दोनों ही स्वी का चित्रण अपने काव्य में करते हैं। प्रकृति सौन्दर्य के कुछ प्रमुख लक्षण निम्न लिखित हैं—

- क- प्रकृति सभी की ऊँच प्रतीत होती है। उसके कटुतम रूप की भी अवर्णन शक्ति सर्व विदित है।
- ख- मनुष्य अपनी भावनाओं के अनुकूल प्रकृति सौन्दर्य की देखता है।
- ग- पल-पल परिवर्तित प्रकृति देश के पक्षधर रूप स्वरूप नश्वर बनती रहती है।
- घ- प्रकृति का प्रत्येक उपकरण ( कमल, बरना-बन्धुमा, उषा, नक्षत्र, गरिमा परित आदि ) मानव की शुद्ध आलोचिक, वास्तविक आनन्द प्रदान करता है। उस आनन्द की तुलना ईश्वरीय आनन्द से की जा सकती है।
- ङ- प्राकृतिक सौन्दर्य अन्य सौन्दर्य की अपेक्षा अधिक स्थायी होता है।

“ कवि दिनकर की सौन्दर्य भावना के दो पक्ष हैं- प्रकृति और नारी बाया बादी कल्पना एवं भावना से प्रभावित होकर उन्होंने प्रकृति की अत और अमृत सुन्दरताओं के प्रति जिज्ञास का अनुभव किया है। अब सब उनकी सौन्दर्य भावना कल्पना प्रधान है। प्रकृति के स्पर्श में उन्होंने लाल, पीला, नीलिमा, अस्ति निर्गुणियों में सौन्दर्य के दर्शनीय दृश्य देखे हैं। उनकी बेतना नित्य नश्वर सौन्दर्य तथा प्रमत्तिभूता एवं प्रकाश की ही प्रशंसा करती है। परन्तु वे प्रकृति के समस्त स्वी के विशेष सौन्दर्य की प्रशंसा करने के पक्ष में हैं। कवि ' दिनकर ' ने जो प्रकृति के नही वरन् बेतन प्रकृति के सौन्दर्य की ही आश्रय गार किया है।<sup>1</sup>

जोष और शर्मा के कवि होते हुए भी ' दिनकर ' के काव्य में प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण प्रकृति के मान्य स्वी में पड़ी सजीवता के साथ हुआ है। कवि की प्रारम्भिक कृति रैबुका में ग्राम की प्रकृति का सौन्दर्य स्पष्ट बड़ा आस्वादक है।<sup>2</sup>

1- श्रीमती- एम0के0 पदमावती : कविशर दिनकर व्यक्तित्व एवं कृति, पृ0 111, 112

2- दिनकर : रैबुका पृ0 14, 15

कवि दिनकर की जन्म स्थली का प्राकृतिक सौन्दर्य सुकीर्णतः एवं यौवन की कुटिया में पद रञ्जित हुई कृतिका के रूप में किया है।

‘दिनकर’ में प्राकृतिक सौन्दर्य का र्जन विविध वृत्ति ‘उर्वशी’ में कई सहज एवं स्वाभाविक ढंग से किया है। प्रकृति के उपह्वानों की तीन स्तुति रूपों में छिछोरे विभक्त किया जा सकता है, — आकाशीय प्रकृति, स्थलीय प्रकृति एवं जलीय प्रकृति। प्रस्तुत विवेचन में उर्वशी के प्राकृतिक सौन्दर्य का र्जन उपर्युक्त तीनों रूपों के आधार पर ही किया जा रहा है—

**प्राकृतिक सौन्दर्य - आकाशीय :-**

आकाशीय सौन्दर्य से तात्पर्य उन सभी ज्योतिष पुंजी से है जो प्रकृति के अंग तो है ही साथ ही दिवस एवं रात्रि में अपने प्रकार से अंग-जग की प्रकाशित करते हैं। उदाहरण के लिये सौर परिवार के संपूर्ण नाभ, ग्रह, रुधिराकार तारों की अपने आकाशीय सौन्दर्य के मान दृष्टि में लिया गया है। ये तो आकाशीय सौन्दर्य असंमित हैं, किन्तु प्रस्तुत विषय की सीमाओं की दृष्टि से यहाँ सीधे में ही ‘उर्वशी’ में प्रयुक्त आकाशीय सौन्दर्य का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

‘उर्वशी’ में आकाशीय सौन्दर्य की आभा प्रारम्भ में ही अस्वीकनीय है। राजा पुरुराज की राजधानी प्रतिष्ठान पुर की पुष्प-गटिका में सन्ध्या निर्मल तारों में नदी और सुवहार विहार करते हुए प्रमुदित हो रहे हैं। अन्धारा सन्ध्या चंदनी में ऊँचता का प्रवण कर रहा है। ये चंदनी के सौन्दर्य का र्जन करते हैं— अष्टौक जलदहीन व्योम विधाय मानव की भाँति निरापत्ति से अत्यन्त शोभित हो रहा है। इसमें विकीर्ण चंदनी सौन्दर्य संपन्न नभ श्रु के शरीराली पर लुप्त कर्णों ने रञ्जित कम्बुकी के सद्गुण विस्तारिताती शोभा प्राप्त कर रही है और उसी प्रकार अन्धारा नभों के द्वारा अपने सौन्दर्य की वृद्धि कर रहा है —

ऊपर है बन्दूमा दशदशी का निर्मल गगन में ,  
 झुली नीलमा पर शिखर तारे यी दीप रहे है,  
 बसक रहे ही नील-बीर पर बूट ज्यी बाँदी के ।

कवि ने बन्दूमा के सौन्दर्य अर्जन में अपूर्वता लादी है। आकाश में  
 बिल-मिलती नक्षत्रोत्ति के मध्य निरापत्ति जिन मन्दर गति से चल रहा है  
 उस समय आकाश के सौन्दर्य का ठिकाना नहीं। उसी समय मस्तयाकस की  
 शीतल गुरभि युक्त पवन शनैः शनैः मधुवन की क्वाइट की मनोहरता हुआ  
 वायुमण्डल में सुगन्धि प्रसारित कर रहा है। इन पंक्तियों में बन्दूमा और वायु  
 के सौन्दर्य का दर्शन किया जा सकता है -

इन दशपी के बीच बन्दूमा मन्द-मन्द चलता है,  
 मन्द-मन्द चलती है नीचे वायु अर्जित मधुवन की ,  
 मन्द मन्द त्रिहस्त कामना प्रेम की मामी अलसायी सी,  
 कुसुम-कुसुम पर विरम मन्द मधु गति में धुम रही हो।<sup>2</sup>

आकाश का सौन्दर्य अर्जन कवि ने मानवीकरण के माध्यम से किया है -  
 सारी देह समेट निष्ठि आलिंगन में भरने की,  
 गगन छीलकर बाँह त्रिभुज त्रिभुज पर बुका हुआ है।<sup>3</sup>

आकाश पृथ्वी स्त्री नायिका का बुझन लेने के लिए मोनमोहण कर मन  
 के मन प्रमुदित हो रहा है। शब्द बाँदनी प्रकृति बन्दूमा अपनी संपूर्ण आभा  
 विकीर्ण कर रहा है। शब्द बाँदनी के बिटके हुए भागी से आकाश में सुन्दर  
 गतियाँ बन गयी है। ऐसे सौन्दर्य युक्त ऊपर की कवि ने छिछोरा बताया है एव  
 किरणों की झुली के तार मानकर आकाश के सौन्दर्य का अर्जन प्रस्तुत किया है -

1- दिनकर : उम्मी ( प्रथम अंक) पृ० 5

2- दिनकर: वही : वही :

3- दिनकर: वही : वही :

मही पुष्ट निखते गगन हे, आसिगन में मोन मगन हे,  
मुदित चांद की छाँई अलकें बुझी, तारों की गलियों में धुमो,  
शुली गगन सिंहीरी पर किरणों के तार बढ़ाओरी ।

छ तृतीय अंक में चांदनी का जर्मन अत्यन्त श्रेष्ठता लिए हुए है प्रकृति की श्रिताता है कि त्रियोग के भनों में वह दुबदायी प्रतीत होती है लेकिन उही प्रकृति त्रियोग के भनों में सुख प्रदान करने वाली बन जाती है। राजा पुरराग की उर्रशी के त्रियोग में जो रुज्ज चांदनी कष्ट प्रदान करती थी उही उर्रशी की पाप्ति पर बड़ी आकर्षक हो जाती है। गन्ध मदन पर्वत पर राजा और उर्रशी के- श्रीधर करते हुए रुज्ज धरुत चांदनी से मुक्त राशि का जर्मन करते है- रात्रि स्त्री नायिका स्वेत तारों से अलु अलंकृत होकर स्वेतस्वर में विवाह कर रही है। चांदनी संपूर्ण आकाश में विविर्ण हो रही है। इन्ने अपने प्रियतम चन्द्रमा पर पूर्ण अधिपत्य जमा लिया है जिसके कारण चन्द्रमा प्रत्यक्ष मुद्रा में सर्वत्र अपना सौन्दर्य फैला रहा है चांदनी युक्त आकाश में नभ्र हिम-हिमा रहे है इनके मध्य में निर्मल, शीतलता युक्त चन्द्रमा विद्यमान है। आकाश में अगमित पनब रहे प्रतीत हो रहे है मानो अनेक जीव बैठे है अथवा चन्द्रभ्योति से निर्मित गर्व के रूप है या आकाश में आत्म-आन पर विद्र से हो गये है और उनमें स्वेत शी कपोत आकर आक्राम हेतु के गये है आदि- आदि —

हां समस्त आकाश दीबता भरा शान्ति सुभसा है,  
चमक रहा चन्द्रमा शुद्ध शीतल निष्पाप वृद्धय आ ।

x x x x x x x x

या नम के कर्त्रों में सित पारावत के गये है ?  
कल्पद्रुम के कुसुम या किये परियों की अक्षि है।<sup>2</sup>

कवि ' दिनकर ' ने आकाशीय सौन्दर्य चित्रण के निमित्त रात्रि, चन्द्रमा,

1- दिनकर : उर्रशी ( प्रथम अंक ) पृ० 8

2- दिनकर : उर्रशी तृतीय अंक पृ० 63



ना, नम्र आदि की रूप्य शिष्य बनाया है। 'उर्शी' में 'रन्ध्र' का सौन्दर्य स्मृत अत्यधिक मनोहारी बन पड़ा है जिससे आकाशीय सौन्दर्य की प्रतिष्ठापना की गयी है।

### प्राकृतिक-सौन्दर्य - स्थलीय :-

स्थलीय सौन्दर्य का क्षेत्र बड़ा ही विस्तृत है। इसी बिना कविता करना असम्भव है ऐसा कहना कोई अप्रतिष्ठ नहीं है। प्रकृति की ये सभी स्थलीय वस्तु जो अतीत काल से मानव मन को मोहित करती रही है जैसे, पुष्प, लता, न, पर्वत आदि की स्थलीय सौन्दर्य का विशेष शिष्य बनाया गया है।

आकाशीय सौन्दर्य की भांति 'उर्शी' में कवि ने स्थलीय प्राकृतिक सौन्दर्य का स्मृत भी पूर्ण मनोयोग से किया है। स्थलीय सौन्दर्य के विस्तृत हेतु अन्त पर पाये जाने वाले पर्वत, भवन, वन, जल, पुष्प, लता, कुंज आदि की माध्यम बनाया है। 'उर्शी' में स्थलीय सौन्दर्य के उद्धरण अनेक मिल सकते हैं। परन्तु स्थानांतर के कारण कुछ प्रमुख उद्धरणों के माध्यम से ही सौन्दर्य का विश्लेषण किया गया है।

स्थलीय सौन्दर्य का स्मृत कृति की प्रथम पंक्ति में प्रथम (अंक) से ही किया गया है। उद्धार के शब्द में "नीचे पृथ्वी पर वस्तु की कुसुम शिभा बाँधे हैं" से स्थलीय सौन्दर्य का आभाव होने लगता है। इसी प्रकार 'उर्शी' में गन्ध मादन पर्वत का स्मृत मिलता है वह इसका उत्कृष्टतम रूप माना जा सकता है। राजा पुरुराज अपने कदम्ब में गन्धमादन का सौन्दर्य स्मृत करते हैं - यह पर्वत अत्यन्त रमणीक है इस पर प्रचुरित होती हुई जय शीतल एवं स्वास्थ्य बर्द्धक है। चारों तार विविध प्रकार के प्रसून एवं लताएँ अपनी कुसुम की जैसाती हुई इसका सौन्दर्य बर्द्धन कर रही हैं। पर्वत पर लम्बी-लम्बी जल तपस्वी के सदृश अपनी गर्दन को उँचा कर ध्यान में हैं। जल एवं लताओं से निर्मित कुंज स्त्री भवन शोभायमान है -

पञ्च स्रग्भ्यदायी शीतल कुशल यहाँ का जल है  
 शीतली में बस जिधर छिड़ि देखिए उत्पल ही उत्पल है ।  
 लम्बे-लम्बे चीड़ ग्रीव अम्बर की ओर उठिये ,  
 एक वारण पर कई छ तपस्वी से हे ध्यान लगायि ।  
 दूर-दूर तक बिड़े हुए, फूली के नन्दन - वन है ,  
 जहाँ देखिये, रही सता- तराँ की कुंज भवन है ।<sup>1</sup>

इसके अतिरिक्त गन्ध मादन पर्वत का सौन्दर्य अर्जुन तृतीय अंक में उज्जैनी के शब्दों में कहा जास्तादकारी है— छ गन्धमादन की बढटाने बड़ी सुन्दर है जिन्से विभिन्न प्रकार के बराने अपने सौन्दर्य की जल रूप में प्रसारित कर रहे हैं। विभिन्न प्रकार के बापादार वृक्ष पर्वत के सौन्दर्य की दिग्गुणित कर रहे हैं। सर्वत्र वसतिमा बरपी हुई है। उपर्युक्त सौन्दर्य से युक्त शताशरण जिसे अपनी ओर आकृष्ट नहीं होगा ? अर्थात् सभी को आनन्द प्रदान करेगा ।<sup>2</sup> चतुर्थ अंक में उज्जैनी पुनः गन्ध मादन पर्वत की भूमि पर स्थित कानून के सौन्दर्य का वर्णन करने लगती है और इसके सौन्दर्य के समक्ष स्वीय आनन्द की भी निम्न श्रेणी की मानती है—

यह धरती यह गगन मृगी से हरी- हरी अष्टजी है,  
 ये प्रसुप्त ये वृक्ष सर्ग में बहुत आद जयिगे ।

x      x      x      x      x      x      x      x      x

कितना सुख । कितना प्रमोद, कितनी आनन्द लहर है,  
 कितना कम स्वीय स्वयं पुर- पुर है हम वसुधा से ।<sup>1</sup>

चतुर्थ अंक में महर्षि व्यास के आश्रम का अर्जुन भी स्थलीय सौन्दर्य के अन्तर्गत किया गया है। महर्षि व्यास की कुटिया ऐसी आकर्षक है कि उसे देख उज्जैनी की ओर प्रेम हो जाता है कि यह कुटिया है अथवा तुरिन्द मन्त्रीजन गृह —

-----

“ व्यञ्जन - कुटी है अथवा यह मङ्गल का पीद भजन है ” १

‘उर्वशी’ में स्थलीय प्राकृतिक सौन्दर्य के अन्य उदाहरण वृक्ष, पर्वत, गुफा, तलाह, इन के सौन्दर्य से सम्बन्धित अन्य स्थलों पर भी द्रष्टव्य है।<sup>2</sup>

**प्राकृतिक सौन्दर्य- जलीय:-**

जल के त्रे सभी रूप जिनमें जल का अधिकतम प्रचलित है अथवा स्थायित्व रूप में है, की ऊर्ध्व जलीय सौन्दर्य के अन्तर्गत लिया गया है। इन सौन्दर्य के विविध प्राप्ति नदी, तालाब, टरनह, झील आदि के सौन्दर्य को ‘ उर्वशी ’ में प्रयुक्त के आधार पर जलीय सौन्दर्य का निरूपण प्रस्तुत किया जा रहा है।

जलीय सौन्दर्य का ज्ञान ४ गन्ध मादन पर्वत पर स्थित नील के सौन्दर्य ज्ञान में अश्लोकनीय है। नील में नीलानी जल हिलीरे से रहा है, किनारी पर शीतल गन्ध युक्त वायु बह रही है। जल का स्वाद अमृत समान है। नीले जल में प्रयुक्त विभिन्न रंगी कमलों से उत्कृष्ट सौन्दर्य दिव्यगुणित हो रहा है। जिस प्रकार नदी अथवा झील के तटी पर मुनि, भक्तजन अथवा तपस्विजम्बुत की आराधना ध्यान में ही किया करते हैं उसी प्रकार नील के किनारी पर स्थित लम्बे लम्बे वृक्ष अथवा की ओर गर्दन उठाकर मुनिरुध स्थित हैं जो कि नील के सौन्दर्य में वृद्धि कर रहे हैं, दूसरे कहा मनोहारी है -

पवन शश्वत् दायी, शीतल सुस्वाद यहाँ का जल है,  
नीलों में बस जिह्वा देखिये उत्पल ही उत्पल है।  
लम्बे-लम्बे बौढ़ ग्रीन अम्बर की ओर उठिये,  
एक बाण पर अँड तपस्वि से है ध्यान लगाये ।<sup>3</sup>

1- दिनकर : उर्वशी ( चतुर्थ अंक ) पृ० ११३

2- दिनकर : पृ० ५, ८, ९, १०, ६१, ६२, ६९, ११२, ११८, १३०

3- दिनकर: उर्वशी ( द्वितीय अंक ) पृ० ३६

अप्य वर्णन भी चतुर्थ अंक में किया गया है — छिय ये अनुराग युक्त  
वार्त्तालय में उर्वती — बुराका के कवन में कल- कल, कल-कल करती हुई खिलखिल  
स्वरित गति के सहित साथ सल्ला का उठना और रतारना कुछ अगुआ है। इस  
अतिरिक्त अन्य-प्रतिभा बर-बार जाती निर्बरी अपने ही सुकृत-पुष्प के फल के  
कलकल की भाँसा में अजीब, सरला प्रतीत होती है। सरिता एवं निर्बरी  
के प्राकृत रूप सौन्दर्य का यह चित्रण कवित्व में अद्वितीय एवं अनिवार्य माना जा  
सकता है। कवि ने सरिता की चञ्चलता और निर्बरी की निरन्तर गति में ही  
सौन्दर्य के दर्शन किये हैं —

कैसे वे लट्ठियाँ उठती हुई सुकल शिला पर,  
हमें देख चलने लगती थी ओर अधिक हलकर ।

x      x      x      x      x      x      x      x

और हाय ! वह एक निर्बरी बिन्दी हुए सुकल की,  
हमें देख चलने लगती थी ओर अधिक हलकर ।<sup>1</sup>

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि  
सुकल प्रकृतिक सौन्दर्य का सेतन किये बिना मानवीय ममता के  
राग रजन से प्रभावित हुए बिना, अन्तर्दृष्टि दायिनी एवं समस्त  
कल्पना शक्ति के सुदुपयोग के बिना कोई भी कवि अपने काव्य की मधुर  
मनोहर नहीं बना सकता । दिनकर कृत उर्वती में ये सभी विशेषताएँ  
पूर्णतः विकसित हुई हैं । कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य मानवीय सौन्दर्य  
और देवी सौन्दर्य की विशिष्ट विचार धार के रंग में रंगकर जिस  
असा सौन्दर्य की सृष्टि की है वह नवीन व अद्भुत है ।

1- दिनकर : उर्वती ( चतुर्थ अंक ) पृ० 120

चतुर्थ अध्याय

उत्तरी की शिल्पगत सौन्दर्य चेतना

### उर्वशी : शिल्पगत सौन्दर्य-वेत्ता

---

स्वतः रूप से काव्य-वेत्ता के दो पक्ष हैं- वस्तु पक्ष और शिल्प-पक्ष। यद्यपि काव्य की विषयवस्तु और उसका शिल्प-विधान अन्वयान्वित है और कवि के अन्तर में उन्हें अविभाज्य ही माना जायेगा फिर भी व्यावहारिक विवेक के क्षेत्र में अनुभूति और शिल्प की पूरक-पूरक मानना ही सुविधाजनक है। कवी का अभिप्राय यह है कि अनुभूति द्वारा उद्भूत और प्रेरित होने पर भी काव्य शिल्प की निजी महत्ता एवं उपयोगिता है। किसी भी वेत्ता दृष्टि से अनुरूप से मूर्त रूप देने तक कवि (वेत्ताकार) किन्-किन उपकरणों का व्यवसाय विधियों को अपनाता है, उन सभी के समुच्चय को शिल्प-विधान कहा जा सकता है। काव्य-शिल्प ही वह माध्यम है जिसके सहारे रचनाकार वास्तविक अभिव्यक्ति करता है। इस प्रकार शिल्प काव्यवेत्ता के बहिर्गम कोशिल के अर्थ में प्रयुक्त होता है और अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व भी रखता है। "उर्वशी" कवि "दिनकर" की काव्य-साधना की क्रम परिणति है, इसीलिए उनके शिल्पगत सौन्दर्य की कला से देखने-पारने की महती आवश्यकता है।

काव्य की रूपावृत्ति का निर्माण करने वाले सभी तत्त्व शिल्प के अभिन्न जो हैं। प्रत्येक कवि व्यवसायिक दृष्टि की यह जागरूकता होती है कि उसके काव्य का शिल्प-विधान पूर्ण है। इसलिये उसके अन्तर्गम में सज्जत, नवीन एवं पृष्ठ शिल्प-विधान में ही उसकी उपलब्धियाँ पावती हैं। अतः वह उपलब्धियों का हौषान है। "उर्वशीकार" भी इस काम का अपवाद नहीं माना जा

---

है। इसकी काव्य-कृति की रचनात्मक प्रक्रिया सुखन विधि भी विशिष्ट और अद्वितीय रही है। विविध शैलिक उपकरणों- भाषा एवं शब्द-विधान, विषय-योजना, अस्तु-विधान, प्रतीकात्मकता नियन्त्रण और इन्द्र-विधान की दृष्टि से 'उर्वशी' की बहुमूल्य एवं कलागत उपलब्धियों को विस्मृत नहीं किया जा सकता। यह कृति भाषा और विचार की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ति नीतिनाट्यों की अपेक्षा जितनी मौलिक एवं वैविध्यपूर्ण है उतनी ही शिल्प-विधान की दृष्टि से ताजा अमूल्य और आकर्षक भी।

'दिनकर' ने 'उर्वशी' में परम्परा का आधार ग्रहण करते हुए भी उसे यथोचित परिवर्तित भाषा-बोध के साथ समन्वित करके अभिव्यञ्जना शिल्प के विविध अंगों का परिष्कार किया है और कलागत सौन्दर्य के नये मानकों की स्थापना भी की है। 'उर्वशी' में प्रयुक्त उत्कृष्ट भाषा एवं शब्द-मण्डार, रमणीय-विषय-योजना, नवीन अस्तु कथन अंशों की प्रतीक प्रयोगसूत्रात नियन्त्रण परम्परा, प्रभावपूर्ण एवं समीक्षार्थक(त्यात्मक) इन्द्र योजना आदि सभी शिल्पगत बायाम उपर्युक्त कथन की सार्थकता को प्रमाणित करते हैं। 'उर्वशी' का शिल्प नितास्त उज्ज्वल है। शिष्ट, सुगन्धपूर्ण एवं सुसंयुक्त पद-संघटनक हसका प्रभाव आकर्षण है। 'उर्वशी' प्रयुक्त शिल्प मानकों के आधार पर 'उर्वशी' की प्रमुख शिल्पगत सौन्दर्य-वैभवा एवं सीमाओं का विश्लेषण इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है -

#### भाषागत सौन्दर्य-

काव्य के शैलिक प्रतिमानों में भाषा का प्राथमिक अस्तित्व और महत्त्व है। शिल्प-संबंधी अन्य तत्त्व- विषय, प्रतीक, इन्द्र आदि भाषा

१- रामाशंकर तिवारी : दिनकर की 'उर्वशी' (समीक्षात्मक अनुशीलन), पृ० ७२

के माध्यम से ही रूप ग्रहण करते हैं। कवि दिनकर के शब्दों में "कविता का अन्तिम विश्लेषण उसमें प्रयुक्त भाषा का विश्लेषण है। कविता का चरम सौन्दर्य उसमें प्रयुक्त भाषा का सौन्दर्य है।" यद्यपि काव्य-भाषा का सम्बन्ध मूलतः कवि के अन्तर्गत से होता है, किन्तु क्योंकि भाषा एक सामाजिक सम्पत्ति भी है। अतः वह युवावस्था की संवाहिका भी होती है। फलस्वरूप उसमें युगानुग परिवर्तन स्वाभाविक है। रक्षाकार की रचना और युग विशेष की परिस्थितियों का भाषा के इस परिवर्तन में प्रमुख हाथ रहता है। प्रत्येक कवि भाषा के परम्परागत रूप की कठिनाई को तोड़कर उसे नवीन जीवनन्त शक्ति प्रदान करके, सरस-सारास कर अमिश्र और परिष्कृत रूप देने के प्रयास में निरन्तर क्रियाशील रहता है।

काव्य में भाषा की समस्या जहाँ कवि के लिए अभिव्यक्ति की समस्या है, वहाँ पाठक के लिए भाषा-बोध की समस्या है। काव्य-भाषा का विश्लेषण कविता की रक्षा-प्रक्रिया को समझने के लिए तो प्रमुख सूत्र सिद्ध होता ही है, दूसरी ओर भाषा की अपनी प्रकृति का ज्ञान कराने के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इसलिए भाषा और शब्द-संयोजन के प्रति सज्ज और सक्रिय रहना प्रत्येक सच्चे रक्षाकार का दायित्व है।

स्पष्ट है कि प्रत्येक काल के काव्य का अपना भाषादर्शन होता है। देश, काल और वातावरण के प्रभाव से कोई भी कवि अन्तान्त पृथक् नहीं रह सकता। वर्तमान युग में तो यह बचाना बहुत मुश्किल-सा है।

१- दिनकर : प्रसाद, पन्त और भण्डारीकरणम्, पृ० ७१

२- "काव्य भाषा की सुकलितता को किसी एक मुस्सै जैसा कुछ नुस्सों में बाँधना असम्भव है।"

- डा० नाथर सिंह : कविता के नये प्रतिमान, पृ० ११९

३- डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी : भाषा और भावना, पृ० ४१



“दिनकर” कुत “उर्वशी” का भी अपना निजी एवं विशिष्ट काव्यात्मक भाषा जादू रहा है। “उर्वशी” रचनाकार की अन्य काव्य-कृतियों की तुलना में भाषा की प्रीति, जादू-गुण और व्यंग्य-शक्ति की दृष्टि से सर्वाधिक स्थान की अधिकारिणी है। इस भाषा में भी कितनी मादकता और रमणीयता पूरी जा सकती है। “उर्वशी” की भाषा इस कथन का ज्वलन्त प्रमाण है। “उर्वशी” की भाषा के शब्द-कथन में रचनाकार की प्रतिभा और सूक्ष्म परीक्षण शक्ति का स्पष्ट परिचय मिलता है। जहाँ इस कृति में संस्कृत-निष्ठ तत्सम शब्दावली का प्रयोग जैसे-

मैं ही निविड स्तननता, मुष्टि मध्यमा,  
मदिरतोषना, काकतुलिका नारी  
प्रस्तरावरण कर फें,  
तोड़ तम को उन्मत्त उभरती हूँ।

“उर्वशी” के प्रथम और तृतीय अंक की भाषा विशेषकर तत्सम शब्द बहुत है। जो कहीं-कहीं प्रियप्रवास की-

“इषीयान प्रसृल्ल प्राय कलिका रावेन्दु विमानना”

जैसी शब्दावली की याद ताजा करती है। तृतीय अंक में तो विलम्ब और अप्रकृष्ट तत्सम शब्दावली का भी कवि ने अधिक प्रयोग किया है जिसका कारण इस अंक की काव्यात्मक सम्बन्धी विवेचना ही मानी जा सकती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जातीय कृति में सरल और सहज शब्दावली का एकात्मिक अभाव है। द्वितीय अंक और पंचम अंक के संवाद सरल (Simple) प्रवाहपूर्ण (Flow) भाषा-शैली में लिखे गये हैं। तत्सम शब्दावली के प्रयोग के साथ-साथ सरल

एवं सत्य भाषा की बानगी भी प्राप्त होती है। कवि की भाषा उतनी ऐन्द्रजालिक और स्वप्निल नहीं है जितनी हायावादी कवियों की तत्सम शब्द बहता भाषा है। राष्ट्रीय कवि होने और कवि-समैयों में सम्बद्ध रहने के कारण "दिनकर" ने "उर्वशी" के शब्द-व्यय में भी जनगति का ध्यान रखा है। इसीलिए उन्होंने प्रभावी और सत्य ऐन्द्रिक अनुपुत्तियों की व्यञ्जना सत्य और सरल भाषा (जनभाषा) में की है। "उर्वशी" में अरबी, फारसी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। किन्तु बल्प मात्रा में। ये शब्द हैं- कुब, जाल, फार, सन्मम, वाम, कदा इत्यादि। स्थानीय रंगत वाले और बोलचाल में प्रयुक्त तथा देशी शब्दों के प्रयोग की उर्वशीकार ने किये हैं जो कभी-कभी छटके भर्य हैं किन्तु ये जनमानस के भावों की ध्वनियाँ भी करते हैं जैसे- रक्ती-पक्ती, जधियाली बेर, साँफ, टुकर-टुकर, जानें, पीरक, दाँत -पंजाती, खुल खुलाना, सुलगी इत्यादि-इत्यादि।

"उर्वशी" के मादक वातावरण की सृष्टि उसकी भाषा में प्रयुक्त त्रिया संज्ञा और विशेषण पदों के द्वारा हुई है जो कृति के सौन्दर्य की द्वि-गुणित करती हैं। उर्वशीकार ने जिन त्रिया-पदों के प्रयोग किये हैं, वे लौकिक, प्रेम और सौन्दर्य की सरस, दिव्य और नितिलील व्यञ्जना करते हैं। उदाहरणार्थ- देती मूकत उठैल, यौवन नल जाता है, नलती है हिम शिला, शीणित में स्वर्ण तरी लेना, देह की पपरी फूट गई है जादि।

"उर्वशी" में कवि "दिनकर" ने परम परिमाजित और सर्वसम्पन्न शिष्ट भाषा का प्रयोग किया है। अशिष्ट वास्तोपपूर्ण और अशुभ शब्दावली से बचने का रक्ताकार ने परसक प्रयास किया है। जहाँ भी इस प्रकार के शब्द प्रयुक्त हुए हैं, वे सर्वथा प्रमाणरुद्ध, भावानुरुद्ध और वक्तता की मः निगति के पीतक हैं। जैसे-

जानें इस नणिवा का धै कब क्या अक्षित किया था।

हीन से गयी जस पाप्मी मुक्तसे मेरे पति को ।

किंतु बाण इन व्याधिनियों के किसे कष्ट देते हैं।

उपयुक्त शब्दावली संवादानुसृत है और जीसानी की मानसिक व्यथा, हादिक-वेदना एवं हातियाहाह को मसी भांति स्पष्ट करती है।

श्रियाओं की भांति कवि के द्वारा प्रयुक्त विशेषणों की वृद्धि के वाक्योपेक्षा की वृद्धि करते हैं। 'उवंशी' में कहीं-कहीं तो एक ही संज्ञा के कवि ने जोक विशेषणों का प्रयोग किया है। ऐसा करने के पीछे जहाँ रचनाकार की विषय को संप्रेषणीय बनाने की भावना निहित है, वही अपने कला-कीर्तन के प्रदर्शन की मनोवृत्ति भी कार्य करती है। यथा-

“ अष्टि, स्निग्ध, निर्बुध शिखा-सी देवों की काया है ”

हिमकण -सिक्त-कुसुम-सम उज्ज्वल जल-जल फलक पर

कवि दिनकर ने उवंशी में अधिक मात्रा में विशेषणों का प्रयोग किया है जो उसकी रमणीयता में चार बाँद लगाते हैं। साथ ही श्रेष्ठ विशेषणों के चयन करने से कवि को भी गौरवपूर्ण पद प्राप्त होता है। 'उवंशी' का निम्नलिखित उद्धरण कवि दिनकर के श्रेष्ठ विशेषण प्रयोगों का समर्थन करता है-

जहाँ शीतल हरित, एकान्त मंडप में प्रकृति के  
कटिबद्ध युवती युवक स्वच्छन्द मिलते हैं।

१- दिनकर : उवंशी (द्वितीय अंक), पृ० ३१

२- वही - कृष्णः (प्रथम, द्वितीय अंक), पृ० १०, २८

३- “ विशेषणों के प्रयोग के सम्य शब्द चुनने के क्रम में ही कवि को भाषा के सृष्टा का गौरव पद प्राप्त होता है। ”

- दिनकर : मिट्टी की ओर, पृ० १५०

४- दिनकर : उवंशी (द्वितीय अंक) पृ० ४८

उपयुक्त पंक्तियों में "कंठिक" विशेषण युक्त, युक्तियों की मानसिक स्थिति को बोधित करता है। शीतल, हरित एवं एकान्त विशेषण भी विशेष प्रकार का आनन्द प्रदान करते हैं।

कीर्तिनाट्य में कथानक का विकास सफल संवादों पर निर्भर है। संवादों में भाषा का अस्मरीयुक्त और पाठ्यों के मनीषाओं के अनुरूप प्रयोग होना ज़रूरी माना गया है। मयादा और शिष्टाचार एवं आत्मीयता भी इन संवादों के विशेष गुण हैं, जो "उर्वशी" के भाषा-सौन्दर्य की दिगुणित करते हैं। "उर्वशी" के संवादों में प्रयुक्त रम्पे, मेनके, सख्जन्म और बिने आदि संबोधक शब्द इसी प्रवृत्ति के परिचायक हैं।

"उर्वशी" की भाषा में वर्णों या शब्दों के रसानुरूप प्रयोग भी मिलते हैं। यह भाषा त्रिगुण समन्वित है। इसमें प्रसाद माधुर्य और जीव गुणों की विशेषताएं निहित हैं। प्रसाद और माधुर्य गुण तो विवेच्य कृति में यत्र-तत्र सर्वत्र माना जा सकता है। जीव गुण का प्रयोग अपेक्षाकृत कल्पमात्रा में इसलिए हुआ है कि कवि का मूल अभिप्राय शृंगार प्रेम और काम की अभिव्यंजना करना है। शौर्य-साहस और पारक्रम की नहीं। त्रिगुण समन्वित शब्दावली क्रमशः शृंगार और वीर रस के निष्पन्न में काफी दूर तक सहायक सिद्ध हुई है। त्रिगुणों में से प्रसाद गुण सर्वप्रथम है। जहां तक उर्वशी का प्रश्न है इस कृति में "प्रसाद" गुण सर्वत्र व्याप्त है। उदाहरणार्थ-

पर तुम मृत रहि हो रमे । नश्वरता के घर को,  
मृ को जो आनन्द सुलभ है, नहीं प्राप्त अम्बर को<sup>१</sup>।

"उर्वशी" में विशेषकर माधुर्य गुण की प्रधानता है। द्वितीय अंक में माधुर्य गुण की निष्पंक्ति पंक्तियों को विशेष रूप से उद्धरित किया जा

सकता है-

कूल-कूल में यही इन्दु-मुल जाकशीण उफाकर,  
 हिस जाता सी बार बिहस हंगित से मुकी कुलाकर ।  
 रस की प्रोतस्विनी यही प्राणों में लहराती थी,  
 दाह-दग्ध सेक्त को, पर, अपिसिक्त न कर पाती थी  
 किन्तु बाज बाजाहू, घनाली हाथो मत्वाली है,  
 मुकी घेर कर लड़ी हो गयी नूतन हरियाली है।

जोब गुण "उर्वशी" में उस समय प्रकट होता है जबकि ब्रह्म पुरुषा देवताओं  
 से युद्ध के लिए तैयार हो जाता है और वह जो पाप व्यक्त करता है यथा-

ताबो मेरा मनुष, यही से बाण साथ अप्पर में,  
 अभी देवताओं के वन में जाय ला देता हूं।  
 फौके प्रहर, प्रणवित, बह्निमय विशिष्ट दृष्ट मध्या की  
 देता हूं नैष मनुजता के विरुद्ध लोह का ।

जब मनुष्य बीकता, व्योम का हृदय दरक जाता है,  
 सक्षम-सक्षम उठते सौन्दर उसके तप की ज्वाला में ।

स्पष्ट है कि "उर्वशी" की भाषा त्रिगुण समन्वित होने के कारण  
 उतनी ही रमणीयतापूर्ण है जितनी जोषपूर्ण रमणीयता को दूसरे शब्दों  
 में हम सौन्दर्य कह सकते हैं।

१- दिनकर : उर्वशी (द्वितीय अंक), पृ० ३०

२- यही- (पंचम अंक), प्रष्ठ क्रमशः १३०-१४१

किसी भी कृति के जब सौंदर्य एवं भाव-चारित्र्य की अभिवृद्धि में मूलतः शब्द-शक्तियों की विशेष भूमिका रहती है। अभिधा, लक्षणा, व्यंजना आदि के प्रयोग अधिक काव्य और उपादेय माने गये हैं। उर्वशी में अभिधा का प्रयोग उल्लेख मात्रा में हुआ है किन्तु लक्षणा एवं व्यंजना के बफ़्तकार और व्यंग्यात्मक उक्तियों का प्राधान्य रहा है जिससे उसकी व्यंग्यवस्तु और भाव-मौलिक सरस और सौन्दर्यमयी हो उठी है।

शिल्पगत सौन्दर्य की दृष्टि से 'उर्वशी' का तृतीय अंक विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस अंक में पूरुषा और उर्वशी के मिलन के द्वाारा प्रायः लक्षणा के द्वारा सौन्दर्य से ही आबुध होते हैं। यहाँ आकर कवि की भाषागत साक्षात्-शक्ति अपने चरमोत्कर्ष ( Climax ) पर पहुँची है, उदाहरणार्थ-

दृष्टि का जो पैर है वह रक्त का भोजन नहीं है।

रँगने लाते सहस्रों साँप सोने के लपि में,

फड़ी रक्त की भाषा को, विश्वास करो इस लिपि का,

और बचा के कुम्ह-कुं, सुभित विनाम-मन ये<sup>१</sup>

उपर्युक्त उदाहरणों में क्रमशः रूप-सौन्दर्य के लिए दृष्टि का पैर और शारीरिक दृष्टि के लिए रक्त का भोजन, स्नायविक तनावों के लिए सहस्रों साँप, चेतना की स्फूर्ति और कान्ति के लिए सोने के लपि पर, प्रेम के लिए रक्त की भाषा, स्तनों के मध्य भाग के लिए कुम्ह कुं, मानव प्रेमियों के लिए मृत्यु के पणिक

---

१- दिनकर : उर्वशी (तृतीय अंक) पृष्ठ क्रमशः ४७, ५०, ५८, ८६

जादि शब्दों के प्रयोग सादाणिक और गूढ़ार्थ व्यंजक ही हैं। अन्य उदाहरण  
पी-

हुम गयी सुपु की सोना पिट्टी के सपने में

किन्तु, पुरुष चाहता योगना मयू के नये हाथों में,  
निय बुझा एक पृथ्वी वधिसिंकि जोस कणों में ।

उपलब्ध उदाहरणों में सुषु की शोभा उबरी, मिट्टी के पत्ते पुनरावा  
तथा मधु के नये जाण-प्रेम के जाण के लिए और गृह्य प्रेयसी के नदगर्भ को  
ध्वनित करते हैं ।

‘दिनकर’ कृत ‘उर्वशी’ में व्यंजना की कृता की दृष्टव्य है-

मलती है हिमशिला , सत्य है, कठिन देह की ओर,  
पर, हो जाती वह ज़ीम कितनी प्यस्विनी होकर ?

यहाँ पर पयस्विनी स्कंद के लोक ज्यों किये जानें पर भी नारी के मातृत्व का ही बोधक है। इसके अतिरिक्त-

वह अवलोकन पूरा वयस की जिसे दिन जाता है।  
प्राण पाकर जिसे कुमारी युवती बन जाती है।<sup>3</sup>

तदाणां एवं व्यञ्जना के साथ-साथ जमिना भी कृति का सौन्दर्य-वर्धन करती है। यथा-

कुसुम बीर काफ़िनी, बहुत सुन्दर दोनों होते हैं,  
पर, तब भी नारियाँ त्रैष्ठ हैं वहीं कान्त कुसुमों से.

१- दिनकर : उर्वशी (प्राप्त अवस्था) , प्र० क्रमशः १३,२२

२-            -वही-            पृ० १९

३- -वही- (द्वितीय अंक), पृ० ३५

क्योंकि पुष्प हैं मूक और इफ़ी बोल सकती हैं।  
सुप्त मूक सौन्दर्य और नारियाँ सबकु सुप्त हैं।

‘उर्वशी’ के भाषागत सौन्दर्य में ध्वनिमूलक शब्दों का ध्वनि भी आवश्यक है।  
ये ध्वनिकोषक शब्द हृन्दिनों द्वारा ग्राह्य होते हैं। लिख-निर्माण और  
बहुवचन भाषात गरिमा की रक्षा में भी ये एक सीमा तक सहायक हैं। वस्तुतः  
उर्वशी में इफ़णन और झंझर चित्रण में शब्द संहति वर्ण-ध्वनी का विधान  
है जिसने भाषा को ध्वन्यात्मक बना दिया है। संगीतात्मकता और नाद-  
सौन्दर्य की दृष्टि में यह ध्वन्यात्मकता विशेष सहायकी रही है। पुनरुक्त  
शब्दों द्वारा व्युत्पन्न ध्वनि और नाद सौन्दर्य की कृता निम्नलिखित उद-  
रणों में दृष्टव्य है-

शान्ति शान्ति सब और किन्तु, यह कणन-कणन स्वन कैसा?  
जल व्योम उर में ये कैसे नूपुर फनक रहे हैं?

०                      ०                      ०  
बा व्योम-वीणा के तार,  
मूती हम नीली कंकार,  
०                      ०                      ०  
हम बनन हनु, हम बनन ।

वन्द्य भी-

कणन कर रहे थे मयूर तट पर से कान लगाकर,  
मैयमन्द हवा-हवा ध्वनि जलधारा में घट नरने की ।

- १- दिनकर : उर्वशी (तृतीय अंक) पृ० ८४  
२- -वही- (प्रथम अंक), पृ० ६  
३- -वही- पृ० ९  
४- -वही- (पंचम अंक) पृ० १३०



उपर्युक्त पंक्तियों में प्रयुक्त शब्द- अणन, कनक, कंकार इनन और लु-  
लु आदि "उवंशी" की भाषा के ध्वन्यात्मक सौन्दर्य के परिचायक हैं।

मुहावरें भाषा विशेष में प्रचलित विशिष्ट प्रयोग हैं और लोकोक्ति संक्षिप्त सारगर्भित लोकप्रचलित उक्तियां हैं जो एक सीमा तक शिक्षण शिष्टाप्रद होती हैं। दोनों ही वाक्य में प्रयुक्त होने पर वाक्य का एक जो बन जाते हैं और भाषा के क्षेत्र में रच-पव कर उसके सौन्दर्य में वृद्धि कर देते हैं। क्योंकि इनके पीछे अनुभव एवं जी की लम्बी परम्परा निहित रहती है। इनका व्याकरणिक दृष्टि से उतना महत्त्व नहीं है जितना कि जी व्यंजना की दृष्टि से। कान की प्रेषणीय, आर्तकारिक, तीव्र और चम्कदार पूर्ण बनाने की दृष्टि से मुहावरें और लोकोक्तियों का महत्त्व तथ्यविक है।

"उवंशी" में मुहावरें और लोकोक्तियों के भावानुकूल एवं रमणीय आकर्षक प्रयोग पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं। फिर भी मुहावरों की संख्या लोकोक्तियों की अपेक्षा कम में विद्यमान है। बानगी में दिए यहां का उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

एक घाट पर किस राजा का रहता क्या प्रणय है ?

0 0 0  
मिट्टी का मोहन कोड़े अन्तर में जान क्या है<sup>२</sup>

0 0 0  
बाज सांझ से सली उवंशी को न रंच भी कत्ती<sup>३</sup>

१- उवंशी : दिनकर , पृ० २२

२- -वली- पृ० ११

३- -वली- पृ० २०

स्त से मुक्त पर पहाड़ टूटगा<sup>१</sup>।

जीर भी मुहावरों जैसे-

ये प्रवक्ताएं, जानें क्यों तरस नहीं लाती हैं,<sup>२</sup>

सही उर्वशी भी कुछ दिन से है लौयी-लौयी ली<sup>३</sup>।

उपर्युक्त पंक्तियों में मुहावरों का प्रयोग अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

स्पष्ट है कि "उर्वशी" की भाषा में कवि "दिनकर" अभीष्ट भाव को पाठकों तक संप्रेषित करने में अधिकतम: सफल रहे हैं। तत्सम शब्द बहला होने के बावजूद भी इसकी भाषा में व्यर्थ वा शब्दाढम्बर और वाक्-जाल नहीं हैं। काव्य-सौन्दर्य, रमणीयता और चित्रात्मकता की दृष्टि से उर्वशी माषिक सृजनशीलताका शब्द-विधान 'तक की परिपक्वता और मौलिकता का परिचायक ही है। "उर्वशी" की जात्मा (भाव) ने अनुकूल ही रचनाकार ने उसके शरीर (भाषा) का निर्माण किया है। डा० जेन के शब्दों में -  
 "उर्वशी में तो भाषा शुद्ध, शिष्ट, रसानुकूल, प्रभाषात्मादक, रमणीय एवं कलात्मक है।----- भाषा कलात्मक ही गई है और भाषा पर कत देने वाले कवि का मन शिष्ट-सौन्दर्य में रम गया है।"

१- दिनकर : उर्वशी , पृ० १९५

२- -वही- पृ० ३१

३- -वही- पृ० १४

४- The recently published 'Urvashi' by Ram Dhari Singh Dinkorr is not only last Series but also the best so far. This is not surprising because the poem is the product of eight years of thought and meditation reflected the poet's extraordinary mastery over the language. R. K. Kapoor, *Australia Weekly of India* 15th Oct. 1961 Page 18

५- डा० रवीन्द्र जे- राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्यकला, पृ० २३६

### विष्णुत शीन्दयं-

विष्णु काव्य-शिल्प का एक प्रमुख और महत्त्वपूर्ण उपादान है।  
 केतना के स्तर पर कवि जीवन ज्ञात और प्रकृति की विषयवस्तु एवं व्यक्त-  
 नावों को विष्णु रूप में ग्रहण करता है। काव्य में विष्णु-विधान एक ऐसी  
 विशेषता है, जिसका अपना निजी सञ्ज्ञात्मक पदार्थ है। काव्य-विष्णु न  
 केवल सञ्ज्ञा का ऊपरी उपकरण है बल्कि भावाभिध्व्यक्ति और भाव संप्रेषण  
 (Communication) का एक सफल माध्यम भी है। यद्यपि भारतीय काव्य-  
 शास्त्र में भी यत्र तत्र विष्णु शब्द का प्रयोग हुआ है किन्तु वाचनिक रूप में  
 प्रयुक्त विष्णु मुख्य रूप से पारम्परिक काव्यशास्त्रीय व्यवस्था का आधारणा  
 मानी जा सकती है।

जहाँ तक विष्णु की परिभाषा का प्रश्न है, काव्य-विष्णु एक  
 ऐसा ऐन्द्रिय शब्द-चित्र है जो कुछ अंशों तक उत्कृष्ट और साक्षात्कार होता  
 है जिसके संदर्भ में मानवीय संवेदनार्थ निहित रहती है और जो पाठक के मन  
 में विशिष्ट रागात्मक भाव उत्पन्न करता है। डा० नीन्द ने विष्णु की दो  
 विशेषताएँ निर्धारित की हैं- १- चित्रात्मकता २- भावात्मकता उन्होंने वे  
 शब्दों में "काव्य विष्णु शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित ऐसी  
 मानस छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।" इसी से मिलती-  
 जुड़ती परिभाषा डा० केदारनाथ सिंह के शब्दों में- "विष्णु वह शब्द-चित्र  
 है जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है।"

१- Poetic image is more or less sensuous picture in words  
 to some degree metaphorical with an undertone of some  
 human emotion in its context, but also charged with an  
 releasing into the readers of special poetic emotion  
 or passion.

C.D. Lewis : The Poetic Image - page 22.

२- डा० नीन्द : काव्य-विष्णु, पृ० ५

इन परिभाषाओं के आधार पर बिम्ब के जो प्रमुख गुण उभरते हैं वे हैं-  
 बिम्बात्मकता, अनुभूति, भाव, ऐन्द्रियता और आवेग। इनहीं गुणों के संदर्भ  
 में काव्य-बिम्ब का विवेक करना समझीन। ध्याताव्य है कि हमारा  
 उर्वशी की बिम्बधर्मिता के विरूपण में काव्य-बिम्ब से ही अभिप्राय है।  
 बिम्ब सृष्टि संचाली मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि और स्वरूप को अध्ययन का  
 विषय नहीं बनाया है। अध्याय के सीमित क्षेत्र के तथा शिल्प का एक  
 महत्त्वपूर्ण को होने के कारण ऐसा करना यहाँ संभव भी नहीं है।

सामान्यतः काव्य-बिम्बों का अन्तिम रूप में वैज्ञानिक वर्गीकरण  
 करना दुःसाध्य ही है क्योंकि एक ही बिम्ब में ऐन्द्रिय, भावात्मक, रूपा-  
 त्मक और नृत्यात्मक गुणों का समावेश हो सकता है। हिन्दी गीत और  
 समीक्षा के क्षेत्र में प्रस्तुत किये गये बिम्ब के अनेकानेक भेद परस्पर पर्याप्त  
 साध्य-विषय्य रहते हैं। अतः विभाजन संचाली उद्भवन में न पड़कर काव्य-  
 बिम्ब के प्रमुख भेदों के आधार पर 'उर्वशी' की बिम्बवत रमणीयता की  
 व्यावहारिक परत करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। उर्वशी में बिम्ब-  
 विधान संशुद्ध प्रवृत्ति के रूप में उपलब्ध होता है। इस समृद्ध बिम्ब-योजना  
 को निम्नलिखित प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

- १- ऐन्द्रिय बिम्ब ।
- २- भाव-बिम्ब ।
- ३- क्रिया बिम्ब ।
- ४- मिश्रित बिम्ब ।

दृश्यात्मकता बिम्ब की प्राथमिक विशेषता है। किसी भी प्रकार  
 का बिम्ब क्यों न हो वास्तविक गुण से अवश्य समन्वित रहता है। ऐन्द्रिय

---

१- वर्गीकरण के आधार स्वरूप दृष्टव्य है- डा० उमा अष्टवंश दाया-  
 वादीकर काव्य में बिम्ब विधान, पृ० १९

विष्य एक प्रकार से रूप विष्य ही हैं। उनका आधार पंचज्ञानेन्द्रियजन्य संवेदनीयता है। इन विषयों के निम्न प्रकार हैं- वास्तुविष्य, श्रवणात्मक विष्य, स्पर्श-विष्य, आत्माविष्य और घ्राण विष्य। इन सभी के उद्घरण उर्वशी में मिल जाते हैं किन्तु यहाँ कुछ प्रमुख उदाहरण से अपने कार्य की मार्गिकता सिद्ध की जा रही है-

“उर्वशी” के द्वितीय अंक में गन्ध मादन पर्वत और उसके आसपास की प्राकृतिक सुषमा का चित्रण करते समय “दिनकर” ने अनेक आश्चर्य के वास्तुविषयों की सृष्टि की है यथा-

तब - तब कीड़ गीब जम्बर की और उठाये,  
एक चरण पर लड़े तपस्वी - से हैं ध्यान लाये<sup>१</sup>।

यहाँ उपमा अलंकार के द्वारा मानवीकरण की प्रक्रिया अपनाते हुए कवि ने रूप-विषय की योजना की है। कीड़ के सूक्ष्म वृक्षों के लिए ध्यानमग्न तपस्वी का उपमान लड़ा की सटीक और सुन्दर है। अलंकारित अवतरण में स्पर्श विषय का उदाहरण दृष्टव्य है-

महाराज ने देस उर्वशी को ज्यीर, अकुलाकर,  
बाहों में भर लिया दौड़ गौदी में उसे उठाकर ।  
समा गयी उस बीच जप्सरा सुक-सम्पार-नता-सी,  
पर्वत के पंखों में सिमटी गिरिमल्लिका-ज्जा सी<sup>२</sup>।

उपरोक्त पंक्तियों में पुनरुक्त द्वारा उर्वशी को ज्यीरतापूर्वक बाहों में भरने, गौदी में उठाने और जातिनवद करने, उर्वशी के उनकी गोद में सुखपूर्वक समा

१- दिनकर : उर्वशी (द्वितीय अंक) पृ० ३०

२- वही - पृ० २९

जाने के सुखद आनन्ददायक स्पर्शों के माध्यम से स्फूर्तिमय बिम्ब का निष्कर्ष किया गया है। इसी की तुलना सुख सम्भार नता और गिरि-मल्लिका लता से करना सर्वथा उपयुक्त है।

भावात्मक बिम्बों में भावों की प्रधानता होती है। इनमें लक्षणा के कर्मकारयुक्त किसी ठोस आधार द्वारा भाव की बिम्बात्मकता प्रदान की जाती है। भाव बिम्ब में दृश्य पक्ष प्रायः धुँसता रहता है क्योंकि वहाँ कल्पित की सफलता और प्रयत्न होती है और बिम्बात्मकता का गुण अपेक्षाकृत कम विद्यमान रहता है। रोमानी प्रसूति की रक्तारों में भाव-बिम्ब अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं। कभी-कभी इन बिम्बों के मूल में मोक्षिका या विन्तन की प्रेरणा भी निहित रहती है। किन्तु अधिकांशतः रागात्मकता वा प्राथम्य माना जा सकता है।

“उर्वशी” में तृतीय अंक के प्रेम भिन्न प्रसंगों में भाव-बिम्ब के लोक उदाहरण उद्धृत किये जा सकते हैं। पुनरुवा जन्म स्वगत कथन में अपनी मानसिक स्थिति और मनोभावनाओं को इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

फिर लुपित कोई जतिथि आवाज देता,  
फिर क्य-पूट खोके लगते क्यर की,  
कामना हूँ त्वचा की फिर जाता है।  
कैना रस की लहर में हूँ जाती है।

यहाँ कवि ने काल और स्थान के तादृश्य से उद्दीप्त युक्त काया-बिम्बों की स्मरण द्वारा भाव पटल पर उचित करके भाव-बिम्ब का निर्माण किया है। बिम्ब रूप में भाव के फलस्वभाव भाव की प्रतिस्थापना कवि ने इस ढंग से की है कि पाठक का मन अनायास ही पुलकित और तृप्त हो जाता है।

विषय केवल दृश्यात्मक और स्थिर ही नहीं होते । ये गतिशील और विभिन्न क्रिया-व्यापारों का अंकन करने वाले भी होते हैं। काव्य में वहाँ यथातथ्य चित्रण के साथ-साथ गतिशीलता का गुण भी विद्यमान है वहाँ क्रियात्मक विषय की सृष्टि होगी । क्रियात्मक विषय में न केवल वास्तव गति का ही इषायेन होता है बल्कि वह आन्तरिक संघर्ष और द्वन्द्व की भी भूत रूप प्रदान करता है। "उर्वशी" के प्रारम्भ में ही कवि ने गतिशील विषयों की सफल योजना की है। जी-

इन दीर्घों के बीच चन्द्रमा मन्द-मन्द चलता है,  
मन्द-मन्द चलती है नीचे वायु वास्त मधुवन की ;  
सुख-सुख पर विरम मन्द, मधु, गति में घूम रही हो<sup>१</sup>।

इस उद्घरण में चन्द्रमा और वायु एवं प्रेम की कामना का मानवीकरण करते हुए वास्तव और आन्तरिक गति (स्थूल-सूक्ष्म के चित्रण द्वारा सजीव क्रिया विषय उपस्थित किया है।

इसके अतिरिक्त "उर्वशी" में कतिपय ऐसे काव्य विषय भी उपलब्ध होते हैं जिन्हें विषय के उन्मूलित पैदापैदों में पूर्णतः समाहित नहीं किया जा सकता है। इन विषयों में एक ही स्थान पर दृश्यात्मकता, नावप्रसङ्गता और गतिशीलता के गुण उपलब्ध होते हैं। ऐसे विषयों की मिश्रित विषय की संज्ञा से अभिहित करना अधिक तर्क-सम्मत है। "उर्वशी" के प्रथम अंक में पुनरुवा ने अपने समासदों और उर्वशी के सम्पूर्ण स्वप्न का जो वर्णन किया है, उसमें मिश्रित विषयों की जाया दृष्टिगोचर होती है यथा-

कवि तल पर से अपने सारे वसन सहेट रहेछ गै ।  
घूम रहे गै कृष्णसार मूग जस्य बीधि-कुंजी में ;

श्रवण कर रहे थे म्यू तट पर से कान लगाकर

०

०

०

हाय, कहीं क्या, वह कुमार किता सुभय्य लाता था ।

यहाँ व्यसन कवि के कृता पर से वस्त्र समेटने और कृष्णासार मूर्तों के निहतापूर्वक आश्रम के कीचि-कुंजों में विचरण करने में प्रिया-विष्य का बोध होता है। म्यू तट पर कान लगाकर ध्वनि श्रवण करना और स्वयं जलबारा में घट मारने से उत्पन्न हुआ-हुआ शब्द अव्यक्त विष्य जलवा ध्वनि विष्य का किण्वण करते हैं। पनूष की प्रत्यंवा भावता हुआ शब्द रूप में भेठा दिव्य वास्तव दृश्य विष्य का सूचक है। सम्पूर्ण विष्यगत वैभव और सौन्दर्य के कारण उद्दीप्त धारा पुनरुवा या भाव-विभोर हो जाना भावात्मक विष्य प्रस्तुत करता है।

स्पष्ट है कि विष्य विधान की दृष्टि से उर्वशी काव्य अत्यन्त समृद्ध एवं सशक्त है। विष्य-निर्माण में दिनकर ने सौन्दर्य शास्त्रीय जागरूकता का सफल उपयोग और निर्वह किया है। इन विष्यों में जहाँ युग बोध की सच्ची कर्तृभा मिलती है। वहाँ ये प्रकृति के नादक सौन्दर्य का पान भी प्रमाता को कराते हैं।

### प्रतीकात्मक सौन्दर्य -

“ उर्वशी ” के शिल्पगत सौन्दर्य का विवेकन करते समय उर्वरी प्रतीक-विधान पर विचार करना भी आवश्यक प्रतीत होता है। कवि ने स्वयं भी “ उर्वशी ” की भूमिका भाग में एक प्रतीकात्मक कृति घोषित किया है।

१- दिनकर : उर्वशी (पंचम अंक), पृ० १३०



उर्वशी के समस्त पात्र और घटनाएं अपना पौराणिक और आख्यायन परक वाधार रखी हुई भी प्रतीकात्मक होती हैं अभिव्यक्त हुए हैं। वस्तुतः "उर्वशी" की मनोबोधानुविधता और प्रतीकात्मकता ही उसे एक सम सामयिक युग के यथार्थ को उकैरने वाली रचना सिद्ध करती है। कथन को सीधे-सपाट रूप से व्यक्त न करके उर्वशीकार ने उस साप्ताणिक और व्यंग्यात्मक रूप में ही अभिव्यक्ति किया है। लक्षणा तथा व्यञ्जना के सफल भाषागत प्रयोगों के द्वारा ही "उर्वशी" के प्रतीकों का निर्माण हुआ है। "उर्वशी" की प्रतीक-गोचना के मूल में प्रेम, काम और ब्रह्मात्म जैसे घटित और गम्भीर विषयों को सप्रेमणीय और सरल बनाकर व्यक्त करने की प्रवृत्ति विद्यमान रही है। विवेक्य कृति में प्रतीकात्मक सौन्दर्य के व्यावहारिक विस्तारण से पूर्ण प्रतीक के वारतविक स्वरूप को समझना भी परम आवश्यक है।

"प्रतीक" शब्द की व्युत्पत्ति "तिन्" धातु में "प्रति" उपसर्ग पूर्वक "हेन्" प्रत्यय लाने से हुई है। व्युत्पत्तिमूलक अर्थ में जिस वस्तु ज्यवा साधन के द्वारा बोध या ज्ञान की प्रतीति होती है उसे प्रतीक कहते हैं। "प्रतियोगी" अर्थात् प्रतीकः "प्रतीक" शब्द का प्रयोग सामान्यतः चिह्न, प्रतिमा, चित्त आदि के अर्थ में किया जाता है। हिन्दी का यह प्रतीक शब्द अंग्रेजी भाषा के (Symbol) का समानार्थी है।

काव्य सौन्दर्य-मृष्टि के संदर्भ में प्रतीक-विधान का मुख्य सर्वाधिक है। प्रतीक सौन्दर्य का अन्विष्य प्राण तत्त्व है। इस विषय में डा० धीरेन्द्र वर्मा के ये शब्द - "प्रस्तुतीकरण मनुष्य का सकल स्वभाव है। पशुओं तथा ध्वनि उत्पन्न करने विषयों का सर्वत आदिम मनुष्य अपने सद्गुण आवाज उत्पन्न करके करता था।"

१-

२- संपादक - धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश (ग्राम भाग), पृ० ५२५

**प्रतीक -विधान** द्वारा कवि अपने कृत्य के सुन्दर, अवगनीय भावों को मूर्त, कानीय रूप प्रदान करता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि प्रतीक विधान में स्पष्टता एवं मूर्तिता अधिक है। तभी तो प्रतीक सङ्ग्रह के लिए ग्राह्य सौन्दर्य बनता है।

पारिभाषिक दृष्टि से प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य वस्तु के लिए होता है जो मानव मस्तिष्क के समक्ष किसी अप्रस्तुत वस्तु सादृश्य को अपने सम्बन्ध सूत्रों के माध्यम से व्यक्त करती है<sup>१</sup>। पश्चात्त्य विद्वान् वेबस्टर ने प्रतीक के विषय में स्पष्ट किया है कि प्रतीक अपने सम्बन्ध, सामंजस्य, यदि जव्वा संयोग से किसी अन्य वस्तु की ओर संकेत करता है। परन्तु उसका उद्देश्य समानता या सादृश्यता नहीं है। वह मुख्यतः किसी अदृश्य वस्तु का दृश्य संकेत है। ~~कहो~~ <sup>२</sup> भारतीय समीक्षकों ने प्रतीक सम्बन्धी मान्यताएं पश्चात्त्य प्रतीकात्मक मान्यताओं से पर्याप्त साम्य रखती हैं। डा० सुधीन्द्र के शब्दों में<sup>३</sup> प्रतीक वस्तुतः अप्रस्तुत की सफ़ा जात्मा या धर्म या गुण का समन्वित रूप लेकर जाने वाले प्रस्तुत का नाम है।<sup>३</sup>

स्पष्ट है कि प्रतीक किसी अदृश्य या अप्रस्तुत के लिए प्रस्तुत किये गये प्रत्यक्ष या दृश्य संकेत है। अर्थात् प्रतीक वह वस्तु है जो अपने तात्कालिक अधिप्राय से भिन्न किसी ऐसे अन्य अधिप्राय को सुझाता है जो विषय की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रतीक किसी वस्तु, भाव या गुण के विरोध सूचक हैं। परिस्थिति तथा संदर्भ के अनुसार प्रतीकों के अर्थ में भी परिवर्तन होता रहता है। प्रतीकों में भावव्यंजना की अपूर्ण शक्ति विद्यमान है। अतः

१- एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ क्रिटिक्वा वाट्यूम २१, पृ० ६००

२- वेबस्टर : कोटिड बाईं विलियम टिन्डाल- द लिटीरी सिम्बल

३- डा० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में स्थान्तर, पृ० ६

प्रतीकार्थ का मुख्य प्रतीक शब्द की तुलना में अधिक है। ऐसे तो जीवन के सभी क्षेत्रों में और साहित्य के अधिकार रूपों में प्रतीक का प्रयोग किया जा सकता है, किन्तु इनका प्रधान स्थल काव्य ही है। काव्यगत प्रतीक अपेक्षाकृत अधिक कलात्मक विशिष्ट और प्रभावशाली होते हैं।

“उर्वशी” में रूप, अर्थ, गूँथ के आधार पर अनेक प्रकार के प्रतीकों की योजना की गयी है। इस प्रक्रिया में कभी तीनों आधारों को एक साथ कहा किन्हीं दो आधारों को एक साथ ग्रहण करने की प्रवृत्ति रही है। इन प्रतीकों का सम्बन्ध मानव मन के व्यापक क्षेत्रों से रहा है जो साहित्य धर्म, इतिहास, कला, दर्शन विज्ञान और मनोविज्ञान के अनेक विस्तार को समाहित किये हुए हैं। “दिनकर” ने प्रतीकों का क्या प्रकृति और मानव जीवन के विविध क्षेत्रों में किया है। “उर्वशी” में सुनियोजित प्रतीकों में भौतिकीय या पौराणिक प्रतीकों की संख्या सर्वाधिक मानी जा सकती है। पुनरुवा, उर्वशी, औशीनरी, सुकन्या, ज्यवन जायू आदि सभी पौराणिकीय और प्रतीकात्मक हैं। पौराणिक आख्यान का आत्मक एवं संवादात्मक आधार ग्रहण करने के कारण ही पौराणिक चरित्र और घटनाएँ प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यक्त हुई हैं।

“उर्वशी” में तीन प्रमुख पात्र हैं- पुनरुवा, उर्वशी, औशीनरी तीनों के ही चरित्र को कवि ने प्रतीकात्मक रूप में ही प्रस्तुत किया है। पुनरुवा का नायक है उसे कवि ने सनातन नर का प्रतीक माना है। रचनाकार की यह अभिलाषा रही है कि कामायनी के मनु की भाँति वे उसे मन के प्रतीक के रूप में स्थापित कर सकें। किन्तु इस कार्य में उन्हें सफलता नहीं मिल सकी है। कामायनी के मनु में चिन्तन, कर्म और दर्शन की समंजित ब्रह्म परिणति विद्यमान है। पुनरुवा में यह परिणति ऐन्द्रिय अतिन्द्रिय अनुभूति के रूप में है। उसका मन अतिशय काम ग्रन्थि से आपूरित है। जो यहाँ से उत्पन्न मनुष्य का प्रतिनिधि माना जा सकता है। औशीनरी की कामकृप्ति से अत्यन्त असंतुष्ट होकर उर्वशी

में लीन होने पर भी उसे पूर्णतः नहीं मिलता । एक ओर वह उर्वशी के माध्यम से सत्य की ओर जाता है और दूसरी ओर वह अदृष्टि का प्रतीक बना रहता है-

रूप का रसमय निर्मग्नता

या कि मेरी ही लक्ष्मी की वस्तु  
मुझको शान्ति से जीने न देती ।

स्पष्ट है कि पुनरवा के ये अभाव मानवीय अभाव हैं। उसे अनिश्चित और अव्यवस्थित मन का प्रतीक कहा जा सकता है। पुनरवा वास्तविक युग के ऐसे प्रबुद्ध व संस्कृत युवकों का प्रतीक है जो मानसिक रूप से अपनी पत्नी के शुष्क, नीरस साहचर्य से असंतुष्ट हैं। उनके जीवन में क्रियाशीलता की म्यूनता है और बौद्धिक चिन्तन की प्रमानता । अपनी कुबलताओं की वे विविध जाठम्वारों की जाड़ में क्षिपा लेने की कला में निष्णात हैं।

“उर्वशी” दिनकर की स्वीकारावृत्ति के अनुसार सनातन नारी और दिव्य-सौन्दर्य का प्रतीक रही है। उसके माध्यम से कवि ने वैषी-संस्कृति पर व्यंग्य भी किया है क्योंकि वे वैयक्तिक प्रेम की स्वच्छन्द और सार्वजनिक वस्तु मानते हैं। उर्वशी ज्ञान, तर्क, साधना और विवेकशक्त नारी है। नारीत्व की भावना उसमें प्रबल है। वह प्रेम-पिपासु नारी है जो व्यक्ति के साथ मिलकर तन्मय होना चाहती है और उसी हवे रहने की लालायित है ।

वास्तव में उर्वशी समस्त नारी जाति की प्रतीक न होकर एक वर्ग विशेष की नारियों का प्रतिनिधित्व करती है। ये नारियाँ हैं आनन्द की

१- दिनकर : उर्वशी (तृतीय अंक), पृ० ४६

२- “मेरी दृष्टि में पुनरवा सनातन नर का प्रतीक है और उर्वशी सनातन नारी का ।”

- दिनकर : उर्वशी (भूमिका), पृ० ४

तणाकण्डित प्रबुद्ध सुसंस्कृत नारियाँ जो स्वभाव से स्वच्छन्द विदारिणी होती हैं और शारीरिक रति के स्थान पर मानसिक रति को अधिक महत्त्व देती हैं। भावत्व का उनकी दृष्टि में उतना महत्त्व नहीं जितना प्रियतम के ऐन्द्रिय तर्पण का ।

जोशीनरी या वरित्र रचना में एक भिन्न प्रकार की भूमिका उदा करता है। वह बिना अभिप्रेत स्वतंत्रताहीन और पुनरावृत्ति की इच्छा में की दायी नारियों का प्रतीक है। पतित्वता होना जो पति की उचित अनुक्ति आज्ञाओं को शिरोधार्य करते हुए जीवन-मर्यादा उसके कल्याण की कामना करना ही उन नारियों की नियति है। इनके वरित्र में संताप और विवशता की रैतारें ही अधिक उभरती हैं जिसे मुँहासे भी ये मविष्य में अपने फल की कामना करती हैं-

हम तो कहीं भाँग उसकी, जो सुत-दुत हमें बदा था,  
मिले अधिक उज्ज्वल, उदार गुण जागे की लज्जा को ।

इस प्रकार पुनरावृत्ति उर्वशी और जोशीनरी तीनों के प्रतीकात्मक वरित्र मिलकर आधुनिक परिवेश के व्यक्तित्व का निर्माण करते हुए सत्य की फलक देकर कवि मौन है। फलतः ही अगला अध्याय हमें इनकी व्यञ्जना भी है।

मानवीय सौन्दर्य और मानव हृदय की अभिलाषाओं तथा क्रिया-कलापों का चित्रण करते समय उर्वशीकार ने कतिपय सुन्दर और मार्मिक प्रतीकों का अभियान किया है यथा-

झीरि वस्ती है, जब तक हरा-भरा उषस है,  
किसी एक के लो वीर्य ली तार निखिल जीवन का ;

१- दिनकर : उर्वशी (पंचम अंक), पृ० १५८

२- -वही- पृ० १०८

इसने अतिरिक्त अन्य स्वतः भी प्रतीक-विधान के सामर्थ्य हं ओ-

पर अदृश्य जो देव फड़े थे गहन, गूढ़ मन्दिर में,  
उनका बन्दन-गान किसी ने कहाँ कभी गाया गा<sup>१</sup>?

काला न कोई शस्य प्रकृति से जो भी बभ्रुत मिला गा,  
शीतल जल का पान वधर से पहले-पहल ला<sup>२</sup> है।

उप्युक्त उदाहरणों में कवि ने प्रतीकात्मक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति मन्दिर, शस्य, शीतल जल का पान शब्दों के द्वारा की है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है। "दिनकर" जी ने हिल्फ के मुख्य अंग प्रतीक का निष्पन्न किञ्चन कृति (उर्वशी) में अत्यन्त सफलता के साथ किया है।

#### अप्रस्तुत विधायक सौन्दर्य-

उल्लेख काव्य की प्रमुख वृत्ति है और अप्रस्तुत विधान काव्य के काव्य और वास्तविक सौन्दर्य की सृष्टि के लिए किया जाता है। बिम्ब और प्रतीक की भाँति काव्य की रमणीयता और प्रभावोत्पादकता अप्रस्तुत योजना से भी सम्बन्धित होती है। जिस कवि का हृदय जितना ही समृद्ध होगा और उसकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति जितनी फी होगी, उसके काव्य में प्रस्तुतों का नियोजन भी उतना ही सटीक और अभिनव होगा। अप्रस्तुतों की योजना भाव-व्यञ्जना के लिए ही की जाती है और उसी के आधार पर रचनाकार की अभिव्यक्तिगत कुशलता भी जाँची जा

१- दिनकर : उर्वशी (चतुर्थ अंक), पृ० १०८

२- -वही- (पंचम अंक), पृ० १४८

संती है क्योंकि यदि काव्य में अप्रस्तुत विधान नवीन और ठोड़ा है तो वह सृष्टियों को कवश्य ही वास्तविकता और वाकचित करेगा ।

वह्न और हृदय की भाँति दृश्य जगत् भी प्रस्तुत और अप्रस्तुत दो कर्णों में विभाजित है । अप्रस्तुत वे अन्तर्गत म नव-जीवन और प्रकृति का वह सम्पूर्ण विस्तार जाता है जो विषय और प्रतीकों के रूप में हमारे अवेतन (unconscious) में समाहित हो गया है। जबकि प्रस्तुत रूप में वे सभी विषय गृहण किये जायेंगे जो चेतन मन पर अधिकार करके अपनी अभिव्यक्ति के लिए मार्ग खोज रहे हैं<sup>१</sup>। कहने का अभिप्राय यह है कि काव्य में दो पक्ष होते हैं- प्रस्तुत और अप्रस्तुत । जो वर्णनीय है और कवि के सम्मुख है वह प्रस्तुत माना जायेगा और कथित प्रस्तुत का स्पष्ट ज्ञान कराने के लिए रचनाकार कवि की भेदक कल्पनाशक्ति, विश्वप्रमणा करके जो कुछ लेकर सामने रखती है वह प्रस्तुत है। इस तरह काव्य के वर्ण्य प्रत्यक्ष विषय को छोड़कर शेष सब कुछ अप्रस्तुत कहा जायेगा ।

वास्तव में अप्रस्तुत विधान एक काव्यशास्त्रीय अवधारणा है और काव्य के दोनों ही पक्ष प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत परस्पर अन्योन्याश्रित हैं । एक के अभाव से दूसरे की गति सम्भव नहीं है । अप्रस्तुत विधान काव्य शिल्प वा केवल बाहरी और साव-सम्प्रात्मक उपकरण मात्र ही नहीं उसकी गति वास्तविक और निर्य है। इस निष्पत्ति में अप्रस्तुत विधान काफी हद तक सहायक है। अतः काव्यकार को यह ध्यान रखना चाहिये कि उसका अप्रस्तुत विधान सब प्रकार से सद्बुद्ध और नवीन हो । यदि ऐसा नहीं किया जायेगा

१- सुलेख शर्मा : काव्य शिल्प के आध्यात्म, पृ० १०४

२- " कविता में प्रस्तुत के लिए अप्रस्तुत की योजना की जाती है वह कल्पना का ही व्यापार है । "

- डा० नान्दर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० २७

तो वह भी अभीष्ट लक्ष्य-सिद्धि में असफल रहेगा। क्योंकि अप्रस्तुत ही तो प्रस्तुत का व्यञ्जक है। साथ ही कवि की प्रतिभा और मौखिकता का परिचायक भी। अधिक कल्पनाशील और सूक्ष्म निरीक्षक कवि अपेक्षाकृत उत्कृष्ट अप्रस्तुत योजना करने में सफल हो सकेगा। इसलिए समस्त कवियों का अप्रस्तुत विधान समान नहीं होता और न नये-नये अप्रस्तुतों की खोज तथा उनका व्यापक और उफ्युक्त व्यवहार प्रत्येक कवि के घर की बात है।

अप्रस्तुत को अलंकार का फ्याँस भी माना गया है किन्तु यह धारणा स्वर्गा उफ्युक्त प्रतीत नहीं होती। अप्रस्तुत विधान से काव्य का अलंकरण सम्भव है और अलंकार योजना में अप्रस्तुत विद्यमान रहते हैं। फिर अप्रस्तुत विधान का एक प अलंकार योजना से कहीं अधिक व्यापक है। इस दृष्टि से अप्रस्तुत को केवल उपमान कहना भी पूर्णतः सत्य नहीं है क्योंकि उपमान योजना साध्य-मूलक अलंकारों द्वारा ही सम्भव है। किन्तु अप्रस्तुत विधान में अतिशय मूलक अलंकारों की, वैधाय्यमूलक और वक्रतामूलक अलंकारों की प्रवृत्तियाँ भी नियोजित होती हैं। अप्रस्तुत विधान का रसानुभूति में विशेष सहाय्य है जबकि अलंकार के अभाव में भी रस-निष्पत्ति सम्भव है। अलंकार बाहे किसी भी दशा में, अप्रस्तुतों की परिधि में उन्हें समाहित किया जा सकता है। यहाँ तक कि बिम्ब और प्रतीक-योजना में भी अप्रस्तुत की सेवा विद्यमान रहती है। इस तरह काव्य में अलंकारिक सौन्दर्य-बोध का विधान करने का श्रेय अप्रस्तुतों को ही है।

जहाँ तक "दिनकर" कृत "उर्वशी" में अप्रस्तुतपरक सौन्दर्य निरूपण का प्रश्न है, कवि ने प्रकृति और मानव-जीवन दोनों ही क्षेत्रों से नवीन, भावानुकूल और सार्थक अप्रस्तुतों का बचन व्यापक स्तर पर किया है। "उर्वशी"



की वस्तुओं की अधिकाधिक सुनिश्चित और समग्र रूप में अभिव्यक्त करने के लिए ही कवि ने जीवितपूर्ण अप्रस्तुतों के प्रति अपनी अभिरुचि प्रदर्शित की है क्योंकि वह कृति में उत्कर्षण उद्देश्य की अतिरंजना के लिए नहीं करता बल्कि उसे स्पष्ट और संप्रेषणीय बनाने के लिए ही उसने अप्रस्तुतों को साधन रूप में ग्रहण किया है। विशेष रूप से 'उर्वशी' की अप्रस्तुत योजना में तो कवि की अन्तर्दृष्टिवाचिका कल्पना-शक्ति अपनी चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी है और उसने हायावादी कवियों जैसे रमणीय, सुन्दर, अर्थव्यञ्जक और अभिन्न अप्रस्तुतों का विधान किया है। कवि की भाषा-पंक्तिमा को नया तैल देने और कान को स्पष्टतम रूप में व्यक्त करने में भी यह अप्रस्तुत पर्याप्त मात्रा में सहायक सिद्ध हुए हैं।

'उर्वशी' के अप्रस्तुत विधान में हमें निम्नलिखित प्रकार अप्रस्तुतों के दर्शन होते हैं जिनके कारण कृति का सौन्दर्य निराल उठा है-

- १- मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत ।
- २- अमूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत ।
- ३- मूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत ।
- ४- अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत ।
- ५- मानवीकरण के रूप में अप्रस्तुत विधान ।

उपरोक्त के आधार पर 'उर्वशी' के अप्रस्तुतमूलक सौन्दर्य का विवेक निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है-

१- मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत -

अप्रस्तुत विधान का मूल आधार है - साध्य । जिसका तात्पर्य है परस्पर भिन्न वस्तुओं (प्रस्तुत- अप्रस्तुत) के बीच किसी ऐसे सामान्य तत्त्व

का उद्घाटन जिसके आधार पर प्रस्तुत का स्वरूप स्पष्ट किया जा सके। इस साध्य विधान के तीन प्रकार हैं- रूप साध्य, गुण साध्य, प्रभाव साध्य मूर्त के लिए पूर्ण अप्रस्तुत विधान में प्रायः रूप और गुण के साध्य का ही आधार वर्तमान रहता है अर्थात् प्रस्तुत के रूप, गुण और क्रिया आदि की समझ में केवल ही गुण रूप और क्रिया वाचा अप्रस्तुत लाया जाता है। जैसे-  
लाल-लाल के चरण कमल से बंझुस से, जावक-से ।

हिमवण-सिता -सुम-सम उज्ज्वल जी-जी कल-मल था ।

मानो अभी-अभी कल से निकला उत्कल कमल था ।

यह गौर चम्पक-यष्टि -सी यह देश रत्न पुष्पाभरण से ।

यह शिला-सा वसा, ये कटान -सी मेरी जुआर<sup>१</sup> ।

उपर्युक्त उद्धरणों में उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों के साध्यत्व के सुन्दर और सार्थक अप्रस्तुतों की योजना की गई है। प्रथम उद्धरण में उत्प्रेक्षा के चरण प्रस्तुत के लिए तीन मूर्त अप्रस्तुत कमल, बंझुस और जावक, द्वितीय में उसके शरीरों के लिए जैसे कणों से युक्त पुष्प तथा पूर्ण विवर्णित कमल ; तृतीय में गौर वर्ण शरीर के लिए चम्पक यष्टि तथा पुनरवा के वस्त्राभार और जुआरों के लिए क्रमशः शिला तथा कटान मूर्त अप्रस्तुत प्रयुक्त किये गये हैं। अप्रस्तुतों का यह विधान मूर्त प्रस्तुत के लिए मूर्त अप्रस्तुत योजना का ही परिचायक है ।

१- दिनकर : उत्प्रेक्षा , पृ० क्रमशः २४, २८, ४८, ५१

२- -वही- पृ० २४

## २- अमूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत :

इस प्रकार के अप्रस्तुतों का विधान करना यवि प्रतिभा का कार्य है। सुप्त कल्पना-शक्ति और सुप्त-सौन्दर्य दृष्टि वाला रचनाकार ही इस प्रकार के अप्रस्तुतों की सफल योजना कर सकता है। "उर्वशी" का विचित्र निष्क्रान्त उदाहरण इसी कोटि में आता है। यथा-

तन-प्रगल्भी मुकुलित अनन्त आशाओं की लाली-सी,  
नृतनता सम्पूर्ण जगत की संक्ति हरियाली की<sup>१</sup>।

इस उदाहरण में सौन्दर्यमयी उर्वशी के बाह्य तथा आन्तरिक गुणों का दिशा निर्देश करते हुए यवि ने अमूर्त प्रस्तुतों के लिए अमूर्त अप्रस्तुतों की योजना प्रभाव साम्य के आधार पर की है। दूसरे शब्दों में शरीर की आभा तथा नृतनता जैसे अमूर्त प्रस्तुतों के लिए आशा की लालिमा तथा हरियाली जैसे अमूर्त अप्रस्तुतों का विधान यहाँ किया गया है।

## ३- मूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत -

इस प्रकार का अप्रस्तुत विधान अपेक्षाकृत कठिन कार्य है किन्तु उस मात्रा में नहीं जिस मात्रा में अमूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत का विधान है। "उर्वशी" में इस प्रकार के अत्यन्त सुन्दर अमूर्त विधान के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। जैसे-

किन्तु नारिया क्रिया नहीं प्रेरणा प्रीत वरनणा है।

० ० ०

नहीं, उर्वशी नारि नहीं, बाधा है निखिल भुवन की,  
 रूप नहीं, निष्कलुष कल्पना है सृष्टा के मन की<sup>१</sup>।

प्राग्विक्रित में नारी फुल प्रस्तुत के लिए प्रेरणा, प्रीत और करुणा जैसे  
 सूक्ष्म और भाववाचक अमूर्त अप्रस्तुतों की योजना की गयी है। द्वितीय उद्घरण  
 में उर्वशी फुल प्रस्तुत के लिए प्रयुक्त किये गये दोनों ही अप्रस्तुत-बाधा तथा  
 कल्पना अमूर्त ही माने जायेंगे।

#### ४- अमूर्त के लिए फुल अप्रस्तुत-

हायावादी वाक्य की भांति अमूर्त प्रस्तुत के लिए फुल अप्रस्तुतों  
 का विधान 'उर्वशी' की विशिष्ट श्रुति है। अमूर्त भावों के मूर्तिकरण की  
 ओर कवि का ध्यान कल अधिक ही केन्द्रित रहा है यथा-

शुभे । तफर्या के बल मे यौवन में ग्रहण करंगा ,  
 प्रीत मेघ, पादप नवीन, मदकल किलोर कुंजर सा ।  
 किन्तु जाकर देखता हूं  
 कामनाएं वतिका-सी बल रही हैं।

दुःख -धवनल यह दृष्टि मनोरम कितनी मृत-सरस है।

यहां यौवन अमूर्त प्रस्तुत के लिए मेघ, पादप और कुंजर नामक  
 फुल अप्रस्तुतों का प्रयोग किया गया है साथ ही कामना तथा दृष्टि  
 ( ) जैसे अमूर्त प्रस्तुतों के लिए वतिका तथा  
 अमृत जैसे फुल अप्रस्तुत लाये गये हैं।

१- दिनकर : उर्वशी, पृ०

२- -वही- पृ० ४९, ११५

### ५- मानवीकरण के रूप में-

मानवीकरण (Personification) पारम्परिक वाच्य-रास्त्र का महत्त्वपूर्ण अंश है। मानवीकरण की क्रिया में प्राकृतिक वस्तु-तत्त्वों में चेतनता की सृष्टि द्वारा उन्हें मानव जैसे क्रिया-कलाप करते हुए दिखाया जाता है। दाय्यावादी वाच्य में मानवीकरण रूप में अप्रस्तुत विधान व्यापक स्तर पर किया गया है। दिनकर कृत "उर्वशी" भी इस प्रकार की अप्रस्तुत योजना पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती है। उदाहरणार्थ-

सारी देह समेट निबिड़ जालिन में मरने की  
गगन लौ कर बाँह बिभुष कसुपा पर फुका हुआ है।

०                      ०                      ०  
दिन में भी अंकुश किये मौखिकी प्रिया दाय्या की  
ये फते रस मग्न, जबल कितने प्रसन्न लगते हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों में गगन और फते की प्रेमी पुरुष जगवा नायक के रूप में चित्रित किया गया है और कसुपा एवं दाय्या की सौन्दर्यामयी प्रेमिका जगवा नायिका के रूप में मानवीकृत किया गया है। मानवीकरण की इस प्रक्रिया में प्रभाव वाच्य से युक्त अप्रस्तुत विधान ही व्यक्त हुआ है।

सकता है ।

मिथकीय सौन्दर्य :-

मिथक (myth) मानव जाति के सामूहिक अनुभव है जिनमें प्रत्येक देश और जाति की संस्कृति के समूह रूप की धरोहर सुरक्षित रहती है । और इस रूप में मिथक मानवीय संस्कृति की शक्तिशाली विरासत है । यद्यपि मिथक शब्द में इतने व्यापक अर्थ निहित है कि उसका समग्र परिचय देना यथा उसकी एक सर्वमान्य परिभाषा निधारित करना सम्भव नहीं तो अतिदुष्कर अवश्य है । फिर भी स्कूल रूप से हम यह कह सकते हैं कि मिथकीय चरित्र और घटनाएँ अति मानवीय होती हैं जिनमें कल्पना की प्रधानता रहती है । जैसा कि हम-जीवन की उसमें विशेष यत्न और विश्वास होता है । इसीलिए मिथक युग युगों में ज्वलते आ रहे हैं । और अन्य उलट फेर और परिवर्तन के बावजूद आज के बुद्धि वादी एवं वैज्ञानिक में भी उनका अस्तित्व विद्यमान है ।

पौराणिक आख्यानों और धार्मिक ग्रन्थों में वर्णित मिथक जब शिल्पगत उपादान के रूप में काव्य के क्षेत्र में प्रयुक्त होते हैं तब वे काल के वर्तमान के पार्श्व में रखकर स्वस्थ रचनात्मक दिशाओं का संकेत करते हैं । और शब्द के अर्थ की नवीनव्याख्या का पुस्तुकीकरण और भाषा को एक विशेष भूमिमा प्रदान करने का कार्य भी करते हैं । मिथक का पूर्व-साहित्यिक रूप काव्य की सीमाओं में नहीं आता किन्तु मानव की गहन अनुभूति और संवेदना से जुड़कर साहित्यिक मिथक कला में जाते

की एक महत्व पूर्ण कड़ी बन जाता है। यही कारण है कि नित्य परिवर्तनशील आधुनिक परिवेश और बढ़ते जा रहे इस युग में जहाँ पुस्तक तथा की विज्ञान और तर्क की क्रांती पर परत कर स्वीकार किया जाता है। मानव की अर्थों एवं और पुराण में दिनोदिन कम होती जा रही है तथा मिथकीय कथाओं और चरित्रों को आधार बनाकर नये जाने जाने वाले काव्य ग्रन्थों की रचना निरन्तर बढ़ती जा रही है।<sup>1</sup> जैसा कि ऊपर कहा गया है कि मिथक मानव की आस्थाओं में बहुत गहराई में उत्तर जाते हैं और उसके अवचेतन में गर्जना सुन रहे हैं। अतः बहुत परिस्थिति पाकर उनका किसी न किसी रूप में उभरना बहुत सम्भव है। कति ज्यों कि साधारण मनुष्य से अधिक चेतना सम्पन्न एवं जागरूक होता है अतः वह भी वह कलात्मक रूप से अभिव्यक्ति कराना चाहेगा मिथक किसी न किसी रूप में उद्भूत होगा ही।

दिनकर भी इस कथन का अपवाद नहीं है उनका विशेष रूप से कृष्ण, रश्मि, उर्वशी और परशुराम की प्रतीक्षा नामक पुष्पेष्ट कृतियाँ तो ठीक मिथकीय धरातल पर अवलम्बित हैं। उर्वशी तो कतिही मिथकीय चेतना और कला-कौशल की अन्तिम और विशिष्ट उपलब्धि मानी जा सकती है। पौराणिक आख्यान परक आधार ग्रहण करते हुए भी कति ने कथा के लिए कथा कहने के निमित्त मिथकीय पात्रों और घटनाओं का उपयोग नहीं किया बल्कि उन्हें अपनी प्रतिभा और मौनिकता से गुगानु-कून तथा नवीन रूप देते हुए सौन्दर्याभिव्यक्ति के एक विशिष्ट कलात्मक

1- "The meaning and functions of Literature as centrally present in metaphor and myth."  
Warren & Wellek : Theory of Literature, page 198.

उपादान के रूप में व्यक्त किया है।<sup>1</sup> मिथकों के सत्त्व गुणों में जहाँ एक ओर उत्तरी के कथों की प्रबलानुक्ति रूप दिया गया है तथा उसका सम्बन्ध प्राचीन वाङ्मय [अतीत] से जोड़ा गया वहीं उसके विषय विधान की समीप और उत्प्रेक्षात्मकता *Suggestive* भी बनाया गया है। उत्तरी का मिथक अत्यन्त प्राचीन एवं महत्व पूर्ण है हा० दीक्षित के शब्दों में - " भारतीय वाङ्मय में उत्तरी का मिथक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है श्रग्वेद सप्तम्य ब्राह्मण के अतिरिक्त अनेक पुराणों में यह मिथक आया है ----- इनके अतिरिक्त अनेक प्राचीन भाषाओं की विविध रचनाओं का यह मिथक आधार बना है।"<sup>2</sup>

उत्तरी में अभिवादन शिखरगत मिथकीय सौन्दर्य दो रूपों में दृष्टि गोचर होता है -

1-निष्ठात्मक रूप में।

2-पुत्रीकात्मक रूप में।

मिथकीय चित्र में छानाई मिथकीय परिवेश के साथ उभरती है। उत्तरी का प्रौढता मिथकीय परिवेश का पूरी जीवन्तता के साथ चित्रण करता है। पुरुषता की चारित्रिक गुणों का विषय निपुणता के मूल में प्रस्तुत कराते समय कवि जिन उपमाओं की प्रयोग करता है वे सभी मिथक जहाँ एक ओर चित्रात्मक वातावरण की सृष्टि करते हैं वहीं दूसरी ओर अनेक प्रसिद्ध भारतीय मिथकों का सांकेतिक नाम प्रयोग भी कराते हैं।

कार्तिकेय-सम शूर, देवताओं के गुरु-सम शानी

रवि -सम तेजवन्त, सुरपति के मद्दय पुतापी, मानी

1-इस कथा की नींव में वैदिक आख्यान की पुनरावृत्ति अथवा वैदिक पुर्ण का पुनरावृत्ति मैरा ध्येय नहीं रहा। मैरी दृष्टि के पुरुषता समातन नर का पुत्रीक है और उत्तरी समातन मारी का। "दिनकर-उत्तरी भूमिका", पृ० ७

2-हा० छोट्टे नाम दीक्षित : दिनकर का रचनासमय-पृ० 124-125



जनक-सदृश सगुह, लघुचर मुक्त, जनक-निष्ठ लोभी

कुसुम सदृश मधुर, गमोह, कुसुमावुध- ने अनुरागी ।

यद्यपि उर्वशीकार ने कवि मिथकीय परिवेश का पूरी जीतनता के साथ चित्रण किया है, फिर भी मादक प्रेम का पुरालोकान होने के कारण उर्वशी का वातावरण प्रकृति की रमणीयता तक ही अधिक सीमित माना जा सकता है। इसमें सौन्दर्य और प्रेम की अनुभूतियाँ तथा काम के माहात्म्य की चिन्तन परख अभिव्यक्ति अधिक है। और घटनाओं का अभान है। यही कारण है कि गन्धमादन पर्वत, प्रतिष्ठानपुर और लखना-म जैसी प्रसिद्ध स्थलों के नाम तो कृति में आये हैं किन्तु उनके मिथकीय भूगोल का व्योरेखार चित्रण (वर्णन) इसमें उपलब्ध नहीं होता जहाँ तक उर्वशी के मिथकों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का प्रश्न है उसमें मिथकीय परिवेश या वातावरण उपस्थिति रहना अनिवार्य नहीं है। कति जग परम्परागत तथा प्राचीन उर्वशी मिथकों की प्रतीकस्त प्रयुक्त करना चाहते हैं तब उसे उनकी लघुचर बनाते हुए एक शक्तिशाली उर्वशी *as a force of poetry* बनाकर प्रयोग करता है तब ही मिथक उसके अभिव्यक्ति की सिद्धि में भी पूर्णतः सहायक हो सकता है। यह कहा जा चुका है कि उर्वशी गीतिनादय के प्रायः सभी पात्र अपना प्रतीकात्मक महत्त्व अवधारण करते हैं।

कार्य यह है प्रमुख पात्र महर्षि लखन तथा सुकन्या दोनों ही प्रतीकस्त प्रयुक्त हुए हैं। लखन जहाँ एक ओर भारतीय इति परम्परा और सद्गुणता के प्रतीक हैं वहीं दूसरी ओर उन पर पुरुषों के प्रतीक भी हैं जो प्रतीक अवस्था में नारी की लाला मात्र से भी बहने की चेष्टा करते हुए किसी शून्य कोठरी में जीवन व्यतीत करते हैं; किन्तु माभाग्य

या दुर्भाग्य से जैसे ही कोई स्त्री उनके कान में गुंथन करती है तो उनकी मनःस्थिति परिवर्तित हो जाती है और वे उसकी विरागी करने लगते हैं -

“ठरी नहीं, यह तपोभ्रज स्त्रुति नहीं मिटि मेरी है।

रुमे। तपस्या के तन से शीतल से गुहण करेगा

उब होगा का और स्तर्ग जिनका संधानक” मे।

हरि प्रसन्न यदि नहीं गिटि बनकर लूम कायी जायी हो।<sup>1</sup>

मुकुन्दा की उत्सगीकार का अभिमत पात्र (Mouth piece), कहा जा सकता है क्योंकि वह अनेक प्रसंगों में *His master's voice* के अनुकूल वैसे ही भाव व्यक्त करती है जैसा कि दिनकर चाहते हो उसे एक वैसे भारतीय नारी रत्न का प्रतीक मान सकते हैं जिसने अपना जीवन दूसरों के हित चिन्ता में व्यतीत करने का कुतः से रखा है और जो भाग्य की गति में अटल विश्वास करती है - यथा

तब भी मरत अनुकूल हो

मुझकी मिले जो हूँ हो

प्रियतम उदा भी हो, लिले सर्वत्र यथ मे हूँ हो।

हम तो कभी भाग उसकी, जो सुख-दुख हमें बटा था।

मिले अधिक उज्ज्वल, उदार गुण जागे की सलना की।<sup>2</sup>

1- दिनकर: उत्सगी । कसूरु अंक। पृ० 107

2- “ “ “

पृ० 38 तथा 158

किम्बदन्त तथा पुराणिक रूप में मिथकीय सौन्दर्य का विवेचन  
 कथावस्तु और शिल्प विज्ञान में किसी न किसी रूप में किया जा चुका  
 है। अतः अध्याय के लेखक की नीतीमा के कारण मिथक शिल्प का एक  
 अंग विशेष होने के कारण तथा विवेचन की गिस्टपेक्षा में बचाने के  
 लिए कि किम्बदन्तत्मक एवं पुराणीतात्मक मिथकों का विस्तृत विवेचन  
 सम्भव नहीं हो सका। इस प्रसंग में केवल सही उदाहरण ग्रहण किये गये  
 हैं जिनका व्यावहारिक विश्लेषण शिल्पगत सौन्दर्य में नहीं किया गया  
 है।

### छन्दगत सौन्दर्य :-

काव्य के अन्य उपादानों की भाँति छन्द भी उसके शिल्पगत सौन्दर्य का एक महत्त्व पूर्ण अंग है। छन्द और कविता परस्पर अनिर्वाह रूप से सम्बद्ध हैं। जिस कविता में मात्रा और वर्णों के अनुगति और यति की निश्चित योजना और सरणात्त की समता पायी जाती है उसे छन्दबद्ध कविता की संज्ञा से अभिहित किया गया है।<sup>1</sup> छन्द अनेक वर्णों के योग से निर्मित होता है। दूसरे शब्दों में व्यात्मक अनुसूच का निश्चित रूप ही छन्द है। अतः छन्द का सर्वाधिक सम्बन्ध लय से है। लय एक प्रकार से छन्द की आत्मा है जिसके आधार पर लयों के विभिन्न वर्णों के लक्षण निश्चित किये जाते हैं। किन्तु लय छन्द के नियमों द्वारा अनुशासित नहीं रहती बल्कि भावनाओं उसका नियन्त्रण करती है। अर्थात् भाव के अनुसूच लय और लय के अनुसूच छन्द का स्वरूप निर्मित होता है। जहाँ तक लय का प्रश्न है वह छन्द का बाह्य विधान है उसे लय की पुरी कहा जा सकता है जिसका निर्वहण लय की भाँति अनिवार्य नहीं है कारण साधारण लय योजना कभी-कभी काव्यानुसूति के स्वच्छन्द प्रवाह में बाधक सिद्ध होती है। साथ ही निरर्थक शब्दयोजना या पुनरावृत्ति जैसे काव्य दोषों की भी सृष्टि करती है जो कृति के शिल्पगत सौन्दर्य को फूट और कुत्तिपूर्ण बना देते हैं।

काव्य में छन्दों के सफल निर्वहण से अभिव्यक्ति में एक विशेष प्रकार की समजीरता और समतुल्य उत्पन्न हो जाता है। छन्द में मग्न करने की शक्ति होती है कनस्थता कभी-कभी काव्य का अर्थ न समझने पर भी पाठक के हृदय में तद्विवेक भाव का रूप तथा आत्मग चिह्नित हो जाता है। और वह उसके स्मृति पटल पर सुरक्षित रहकर उसे कभी-कभी आह्लाद प्रदान करता

1. सम्यक् तरण यति-गति नियम, अस्मिन् समता छन्द ।

जो पद रचना में मिले, भानु भक्त मुं छन्द ॥

श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु : छन्द प्रभाकर-पृ० ।

है। साथ ही छन्द प्रयोग के कारण भावा में संगीतात्मकता और नाद सौन्दर्य की सृष्टि होती है।

अभिव्यक्ति की सजीव, स्थायी और बौध्दाम्यमानने में भी छन्द का विशेष हाथ रहता है। सम्भवतः इसी लिए छन्द और नय को काव्य की सुदीर्घ नीचन्तता का कारण माना गया है।<sup>1</sup>

स्पष्ट है कि छन्द काव्य का मेरुदण्ड है। काव्य सौन्दर्य उपर्युक्त छन्द योजना से निखर उठता है। क्यों कि कति छन्द के माधुर्य और स्वर संयोजन के लिए सौन्दर्य बोध वृत्ति का ही प्रयोग करता है। छन्दोबद्ध कविता का आनन्द ही दुहरा होता है अतः छन्द रचना के प्रति कवि की जागरूकता अपेक्षित है। उर्दगी एक सफल काव्यकृति है जो काव्य की दृष्टि से गीतिनाट्य के अन्तर्गत आती है। गीतिनाट्य का पूरा विधान छन्द में होता है क्यों कि छन्द की सहायता से ही उसकी विषयवस्तु और भावावेश के तीव्र क्षणों को अभिव्यक्ति मिलती है। उसके पैरों की नय और भावनाएँ परस्पर सन्निवृष्ट और बाध रहती है। उर्दगी में विरचित छन्द भी सफल पात्रानुकूल और प्रताह पूर्ण संवादों की सृष्टि में काफी दूर तक सहायक सिद्ध हुए हैं।

यद्यपि दिनकर ने अपने अन्य दो प्रबन्ध काव्यों कुशेल और रश्मिरथी में दोनों प्रकार के परम्परागत छन्द तार्किक और मात्रिक दोनों प्रकार के छन्द प्रयोग किये हैं। किन्तु कथानक की गतिशीलता, संवादों की स्वच्छन्दता और युग-जीवन की परिस्थितियों के कारण उर्दगी में कति परम्परागत छन्दों का पूर्णतः सकल निर्वह नहीं कर सका है। उपर्युक्त दोनों प्रकार के परम्परागत छन्दों में तार्किक छन्दों का प्रयोग उर्दगी में प्रायः नहीं हुआ है।

1-क- "कल्पना में है कमकती तैदना,  
उष में जीता मिसकता गान है।  
शून्य आहों में मुरीने छन्द है,

मधुर नय का भी कहीं स्वमान है।" पन्त-पन्नव पृ०

ख- "बहु का गट टूट गकता है परछन्द कीएक तसी नहीं हूट

सकती।" हा० पुत्तुनान शुक्ल : आ० हिन्दी काव्य में छन्दयोजना

मात्रिका तन्दों के मफल निर्वह और मरम के परीक्षण हेतु उत्तरी के कादि से अन्त तक सर्वाधिक मात्रा में प्रयुक्त अन्त निम्नो रक्षितः 26 से 28 तक मात्रा पायी जाती है, विचार करना अधिक गणितीय है। पिण्ड शास्त्र के अनुसार 26 मात्राएं कुमर : विष्णुपद सरसी और मार तन्दों में होती हैं। विष्णुपद में प्रत्येक चरण में 26 मात्राओं में 16-10 पर यति तथा अन्त में गुरु की योजना होती है। सरसी में 16 मात्राओं के बाद यति अन्त में गुरु चघु होते हैं। मार में 16-12 मात्राओं पर यति और अन्त में दो गुरु का विधान रहता है। उत्तरी में प्रयुक्त उपर्युक्त तन्दों के उदाहरण यहां दृष्टव्य हैं -

पुं प नहीं विक्रान्त, भीम, दुर्जय, कराल होता है,  
उहां मामने तथ्य खड़े हों, जरि हों, नटाने हों।<sup>1</sup>

न तो एक दिन वह होगा, जड़ मलित मनाय लगी पर  
क्षण भर को भी किसी पुरुष की दृष्टि नहीं मिलेगी।<sup>2</sup>

आग-आग में महर लायक की राग लगाने वाली  
नर के सुप्त, शान्त शीति में आग लगाने वाली।<sup>3</sup>

नर समेट रखता बाहों में मधुन के नारी की।  
शोभा की आभा तरंग ने कवित प्रीता रक्ता है।<sup>4</sup>

उपर्युक्त उदाहरणों का पिण्ड शास्त्रीय परीक्षण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तरी कार ने अन्त शास्त्र के उत्तरी नियमों का पूर्णतः पालन नहीं किया है। उसके द्वारा प्रयुक्त मात्रिक तन्दों में केवल मात्रागत अनुकरण

1-दिनकर : उत्तरी, {पंचम अंक}, पृ० 154

2- " " " {चतुर्थ अंक}, पृ० 104

3- " " " {द्वितीय अंक}, पृ० 28

4- " " " {तृतीय अंक}, पृ० 58

ही अधिक पुराप्त होता है। यति गति और लघुगुरु का मफल निरति नहीं। उर्वशी में एक पक्ति में होकर सात पक्ति तक के मात्रिक छन्द भी मिलते हैं जिनमें तुक कभी दूसरी और चाधी पक्ति पर मिलती है तो कभी पहली, दूसरी और चाधी पक्ति पर। इससे विदित होता है कि दिनकर ने उर्वशी में विष्णुपद, सरसी और सार छन्दों का प्रयोग न करके 26, 27 और 28 मात्राओं के छन्द के छन्दों का प्रयोग किया है।

उर्वशी में प्रयुक्त हमारे प्रकार का छन्द मुक्त छन्द *free Verse*, है। यह कवि की अभिन्न छन्द योजना है जो निष्काम्यक होकर मुक्ति-योजित हुई है। भावों के द्वारा अनुशासित होने के कारण कवि ने मुक्त छन्द की भाषा को अनुकूल बनाकर सुमावदार तरीके से भी प्रस्तुत किया है। छन्दों के द्वारा उर्वशी में प्रयुक्त मुक्त वृत्तों में किन्हीं नामों और लक्षणों की सीमा में नहीं बाधा जा सकता। फिर भी उनमें व्याप्त लय और समरसता का जो प्रभाव और सौन्दर्यविरामान है वह अद्वितीय है। ये छन्द वक्ता की मनोदशा और उत्तर छन्द की अभिप्रायिकता के लिए सर्वाधिक अनुकूल है। इन छन्दों की लय भावनाओं और सौन्दर्य को स्पष्ट करने के निमित्त अक्षीलिखित पंक्तियाँ पर्याप्त होगी।

यह तुम्हारी कल्पना है, प्यार कर लो।

रूपसी नारी प्रकृति का चित्र है सबसे मनोहर।

ओ गगन चारी। यहाँ मधुमास जाया है।

भूमि पर उतरी,

कमल, कर्पूर, कुंकुम से, कुंज में

इस अतुल सौन्दर्य का श्रार करनी।

यहाँ छन्द के अतुलान्त होने के बावजूद भी भावों की गति भंग नहीं हुई है। साथ ही इसमें लय का मफल निरति भी निरामान है। जो इसके मतेतल की रस्य करता है।

उर्वशी में कुछ सफल गीतों की रीजना भी की गयी है। ये गीत कृति से एक ओर जहाँ संगीतात्मकता तथा नादमोन्दर्य की उत्पत्ति करते हैं वहीं दूसरी ओर भावों की कोमलता एवं रसोद्भूत की पुरनता के भी प्रेरक हैं। क्योंकि उर्वशी में प्रेम और श्रार के चित्रण की प्रधानता रही है। इस लिए कवि की मनोवृत्ति औजपूर्ण गीतों की अपेक्षा शारिक गीत रचनाओं की ओर ही अधिक प्रकी हुई है। प्रतिनिधि - शारिक गीतों और संगीतात्मकता की दृष्टि से उर्वशी के समूह गीत और अप्रमराओं द्वारा गाये गये हैं उदाहरणस्वरूप लिये जा सकते हैं यथा -

"फूलों की नाव बहाओरी, यह रात सपहरी आयी।

हूँ सुधा-मलिन की धारा,

हूँ नभ का झूल-किनारा,

गुदित बाद की ऊलटे झुगो,

तारों की गन्धियों में छुगो,

झुनो गगन हिलोरे पर, किरणों के तार बटाओरी !

यह रात सपहरी आयी ।"

इसी प्रकार अन्य गीत भी जैसे-

हम गीतों के गुण मधम,

हूम छनन छसु, हूम छनन ।

गिहर - गिहर उलता त्रिभुवन

हूम छनन छसु हूम छनन ।" 2

---

1- दिनकर : उर्वशी {प्रथम अंक}, पृ० 8

2- " " " {२ " " } , पृ० 9



उपर्युक्त गीतों में दृश्य एवं कथन और गीत तथा गीत दोनों ही प्रकार की आनन्दोपलब्धि होती है। यह समस्त गीत संगीतात्मकता और नाद से आपूरित है। तथा गान्धर्व और कथार से ललित आलम्बित। इनके पठन क्षण से प्रसादा पायावन्ती विशेषतः प्रसाद के कारण रस और गान्धर्वयुक्त गीतों की याद ताजाकर सकता है। तन्मय और नीरस के गीतों से भी बहुत कुछ गाय्य रहते हैं। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि उत्तरी में अतुल्यान्त शब्दों का बाहुल्य है और तृतीय श्रेणी में मुक्त शब्द का प्रयोग भी मर्यादा रहा है। उदाहरण के लिए उत्तरी के शब्द न्यूनाधिक उगमति लिए रहता है। स्पष्ट है उत्तरी भाव और विचार (उद्देश्य) की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती गीतिनाटकों की अपेक्षा जितनी अधिक और वैविध्यपूर्ण है उतनी ही शिल्प गत गान्धर्व की दृष्टि से ताजी, अभिनव एवं आकर्षक है। इसकी भाषा, शब्द प्रसादा और महान्वे है। इसकी दानी कवि की प्रतिभा और भाषात्मक अधिकार की परिचायक है। निम्न योजना की दृष्टि से यह कृति अधिक समशील और समृद्धि है। इसके निम्न शक्ति, स्पष्ट और भव्य अधिक है, वाच्य और अविश्वस्य कम माननीय केतना में मुक्त इसकी प्रतीयगत उपलब्धियों को भुगता नहीं जा सकता। कवि द्वारा प्रयुक्त सभी प्रकार के प्रतीय वर्तमान समवेदना, विशिष्ट जीवन दृष्टि तथा गम्भीर प्रश्नों की अभिव्यक्ति करते हैं। साम्य मुक्त अप्रस्तुत विधान में रचनाओं को काल हासिल है। ऐसा प्रतीत होता है कि अप्रस्तुत सदैव के सम्मुख अपनी गौरवशाली सेवा मजारे रहे रहते हैं क्योंकि उन्हें अभी भी कुछ करने की आज्ञा मिल सकती है। मिथ्य तत्त्व से परिपूर्ण होने के कारण उत्तरी में समशील हीक्षण और प्रामाणिकता आ गई है परम्परागत तथा अभिनव मुक्ति एवं प्रयोगों एवं सम गीति योजना से भाषा शैली में न्य, संगीतात्मकता एवं नाद - गान्धर्व की जो सृष्टि हुई है वह आलोच्य गीतिनाट्य की गेहता समस्त गीति की बचाये रखने में पूर्णतः सक्षम रही है। इस प्रकार अभिव्यक्तिकोश की दृष्टि से उत्तरी का आधुनिक युग की एक मर्यादा और तेजोह माना जा सकता है।

उपसंहार

—○—

### उपसंहार \*\*\*\*\*

पुस्तक मनु शोध-प्रबन्ध है जिसने सभी उपायों में उत्तरी की सौन्दर्य-कैलमा का जी सैदान्तिक और व्यावहारिक विवेचन पुस्तक किया गया है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उत्तरी एक आध्यात्म सौन्दर्य स्नात कृति है। जी अपनी सौन्दर्य-भावना की स्वीकृति एवं समझ के कारण बहुत समृद्ध है। कवि हिमकर ने सौन्दर्य विषयक धारणा को अपने मनः संस्कारों के अक्षुब्ध तथा जीवन और परिवेश की सीमाओं में यथावत चित्रित किया है। व्यक्ति मन के गह्वर और वर्तमान सामाजिक गंधार्थ दोनों ही उत्तरी के सौन्दर्य बोध की परिधि में सहज और नार्कसिक रूप में समाहित हैं। उत्तरी गीतिमाट्य के सौन्दर्य निष्पन्न का अध्ययन हमने चार दिशाओं में किया है - भाव एवं कल्पना का सौन्दर्य, अध्यात्म सौन्दर्य, अभिव्यक्ति परक सौन्दर्य, प्राकृतिक सौन्दर्य, मानवीय एवं देवी सौन्दर्य।

अध्यात्म सौन्दर्य की दृष्टि से उत्तरी एक मौलिक नूतन और सज्जन काव्य कृति है। परम्परागत पौराणिक अध्यात्म का आधार ग्रहण करते हुए भी रचनाकार ने उसके स्थूल सन्धनों और जट मटियों को स्वीकार नहीं किया। यद्यपि उसकी कृति की अध्यात्म पर तात्पर्यात्म का निदाम, तरटूण्ड रसल, ही० एच० बोरिस का स्पष्ट प्रभाव परबद्धित होता है। फिर भी उममेकति ने मौलिक उद्भावनाओं की सृष्टि भी की है। उत्कृष्ट वर्तमान मानव जीवन की विवाह काम और प्रेम सम्बन्धी विव्यक्तिता का उद्घाटन करते हुए कवि ने आधुनिक युग के मनोवैज्ञानिक मर्या को ही स्पष्ट किया है। यद्यपि विषय की जटिलता और रहस्यमयता के कारण उसे कामाध्यात्म की सर्वमान्य और सर्वज्ञ सिद्ध करने में पूर्णसफलता नहीं मिल पायी है फिर भी आधुनिक बुद्धिवादी मानव के चरित्र में उल्लेखनीय और उभायी की उसने बड़ी ठारीकी और कोशल से चित्रित किया है, कयमे कोर तन्देह नहीं।

सौन्दर्य निरूपण के सम्बन्ध में दिनकर की अपनी विशेष धारण बधा वैचारिकता रही हो उनके अनुसार सुकुमारता और मन्तुलन सौन्दर्य के प्रमुख प्राण तत्व हैं। शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा हार्दिक सौन्दर्य केत होता है क्योंकि उसमें सात्विक शुद्धता का पूर्ण विकास होता है। बहिर्स्तर सौन्दर्य संयोजन सोने में सुगन्धकी भाँति अधिक मूल्यवान है। उर्दशी में सौन्दर्य के विविध रूपों का उद्घाटन, उक्त करते समय दिनकर ने संयोजित, मन्तुलित सौन्दर्य को ही अधिक महत्त्व दिया है। उर्दशी में परिष्कार्य मानवीय सौन्दर्य और प्राकृतिक सौन्दर्य कवि के युगानुकूल मौलिक और अभिन्न सर्वोत्तम सौन्दर्य बोध को ही प्रोत्तिष्ठ करते हैं। गन्ध मादन, पुरस्ता, उर्दशी लयन सुकन्या, आशीनरी आदि का सौन्दर्य चित्रण दिव्य, गणीय और वैभवशाली बन पड़ा है।

उर्दशी के विषय कान में जहाँ कवि ने मौलिकता और स्वातन्त्र्यता का परिष्कार दिया है वहीं उसके अभिव्यजना शिल्प को भी उसने पृष्ठ, सुत्तिपूर्ण और मधुरैषणीय बनाने का सफल प्रयास किया है। भाषा, शब्द मधुरता, शिल्प निर्माण, प्रतीकात्मकता, अप्रस्तुत विधान, मिथक्यता, कन्द एवं मगीतात्मकता, आदि सभी की दृष्टि से उर्दशी मणिखट्टम और अद्वितीय कृति है। इस का शिल्प विज्ञान न केवल काव्य की गर्जनात्मक गरिमा का परिचायक है बरन कवि की असाधारण प्रतिभा, सामर्थ्य तथा बौद्धिक परिपक्वता का भी प्रतीक है। यही कारण है कि पाठक इस काव्य को पढ़ते ही रसमग्न और अभिभूत हो जाता है।

वास्तव में उर्दशी का कथ्य एवं शिल्पगत सौन्दर्य निरूपण बड़ा मार्मिक प्रभावशाली और मारक है। ऐसा प्रतीत होता है मानो इसके अनुसूती और शिल्प एक दूसरे में दौड़ कर रहे हैं, पर न शिल्प अनुसूती के महत्त्व आयोग व

पुभाव को कम कर पाता है और न अनुस्ती ही शिल्पविधान की स्वचन्द्रता पर कठोर अंकुश रख पाती है। यह निश्चित कहा जा सकता है कि ऐसी सौन्दर्य सम्पन्न कृति है।

-----○-----

**सन्दर्भ - ग्रन्थ सूची**  
\*\*\*\*\*

**हिन्दी-ग्रन्थ**  
-----

- |                                |  |  |
|--------------------------------|--|--|
| 1-डा० उमा अष्टवक्त्रा          | आपावादीतर<br>काव्य में शिल्प विधान       | आर्य बुक लिमी, दिल्ली<br>प्र० मन् - 1974                         |
| 0-छठि छठछठ                     |  |  |
| 2-श्री मती एम० के०<br>पद्मावती | कवि दिनकर व्यक्तित्व<br>एवं कृतित्व      | जवाहर पुस्तकालय, मधुरा<br>प्र० मन् - 1967                        |
| 3-कुमार विमल                   | सौन्दर्य शास्त्र के तत्त्व               | राजकमल प्रकाशन, पटना   |
| 4- " "                         | हाया बाद का सौन्दर्य<br>शास्त्रीय अध्ययन | राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6<br>प्र० मन् - 1970                      |
| 5-डा० केनारा वाजपेयी           | आधुनिक हिन्दी<br>कविता में शिल्प         | आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली<br>प्र० मन् - 1965                    |
| 6-गजानन माधव<br>मुक्तिबोध      | नयी साहित्य का<br>सौन्दर्य शास्त्र       | राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली<br>प्र० मन् - 1971                     |
| 7-सम्पा० गोपाल कृष्ण<br>कोन    | दिनकर सृष्टि और<br>दृष्टि                | वात्सायन प्रकाशन, गाजियाबाद<br>बाद प्र० मन् - 1966               |
| 8-सम्पा० गोपाल<br>राय          | राष्ट्र कति दिनकर                        | ग्रन्थ निक्षेप, 87/24<br>राजेन्दु नगर, पटना<br>प्र० मन् - 1975   |
| 9-छोटे गाल दीक्षित             | दिनकर का रचना<br>मसारा                   | प्रतिभा प्रकाशन, इलाहाबाद<br>प्र० मन् - 1976                     |
| 10-जगन्नाथ प्रसाद<br>भानु      | सन्द प्रभाकर                             |  |
| 11-जय शंकर प्रसाद              | क्यात शत्रु                              |  |
| 12- " "                        | कामाचिनी                                 | इंडियन एजुकेशनल हाउस<br>23 दरियागंज, दिल्ली-6<br>प्र० मन् - 1975 |

13-डा० नरेन्द्र	आस्था के चरण	नैक्स पब्लिशिंग हाउस दिल्ली-6, पु० मन्-1968
14- "	काव्य चिन्म	" " " " -1967
15- "	भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका	" " " " -1974
16- "	रस सिद्धान्त	" " " " -1964
17-डा० नरेन्द्र मोहन	आधुनिक हिन्दी काव्य में उपर्युक्त विधान	" " " " -1972
18-डा० नामवर सिंह	आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ	बौक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, पु० मन्-1968
19- " "	कविता के नये प्रतिमान	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पु० मन् -1968
20-डा० पुस्तू लाल शुक्ल	आधुनिक हिन्दी काव्य तन्त्र योजना	
21-डा० पुरुषोत्तम दास अग्रवाल	मध्यकालीन कृष्ण काव्य में रूप सौन्दर्य	बीहरी प्रकाशन, बीरही का रास्ता, जयपुर-3 पु० मन्-1970
22-सम्पा० प्रताप चन्द्र जैसवाल	राष्ट्र कवि दिनकर और उनकी साहित्य साधना	समीक्षा बौक कार्यालय, आगरा, पु० मन्-1976
23-व्या० महेंद्र प्रताप शास्त्री	कालिदास कुमार सम्भ्रम	रामनारायण लाल, इलाहा- बाद पु० मन्-1951
24-रामधारी सिंह दिनकर	छिन्न उर्वशी	उदयाचल प्रेस, पटना पु० मन्-1973
25- "	प्रसाद, पन्त और मैथिलीशरण गुप्त	" " " "
26- "	धुप लहि	" " " " -1955

27-रामधारी सिंह दिमकर	रेणुका	उदयासन प्रेस, पटना प्र० मन्-1960
28- " "	मृत्तिलिखक	" " -1964
29- " "	चक्रवाल	" " -1956
30- " "	धर्म नैतिकता और विज्ञान	" " -1956
31- " "	मिट्टी की और	" " -
32-डा० यशेन्द्र तिवारी	दिमकर की काव्य भाषा	पुस्तक संस्थान, नैहट्ट नगर कानपुर, प्र० मन्-1976
33-रमेश्वर तिवारी	दिमकर की उत्तरी समीक्षात्मक अनुशीलन	श्रीछात्रा प्रकाशन, तिरु भवन, तारापल्ली, प्र० मन्-1961
34-डा० राजपाल शर्मा	युग केता दिमकर और उनकी उत्तरी	हिन्दी साहित्य मन्दिर, पटना-4, प्र० मन्-1972
35-रामचन्द्र शुक्ल	सिन्धुसामिनि	इन्डियन प्रेस लि०, प्राय प्र० मन्-1950
36-डा० रामदत्त भारद्वाज	गुरुदत्त अभिषेकन्दन ग्रन्थ	
37-डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी	भाषा और संवेदना	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी प्र० मन्-1964
38-डा० रामेश्वर लाल खन्डेसवाल	आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य	नेशनल एडिजिनिंग हाउस, दरियागज, दिल्ली प्र० मन्-1958
39-डा० किमल कुमार जैन	महाकवि दिमकर उत्तरी तथा अन्य कृतियाँ	भारतीय साहित्य मन्दिर फर्रुखाबाद, दिल्ली-7 प्र० मन्-1965
40-डा० लीला माधुर	प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन	आफना प्रकाशन, चौटा रास्ता, जयपुर, प्र० मन्-1971



- 41-डा० शकुन्तला शर्मा आधुनिक काव्य में सौन्दर्य परस्वती मंदिर उत्तर  
भावनना बनारस, पु०सन्-1952
- 42-डा०शेखर चन्द्र जैन राष्ट्रीय कवि दिनकर जयपुर पुस्तक मंदन, जयपुर  
वीर उम्मी काव्य कला पु० सन्-1974
- 43-सच्चिदानन्द सारमप्लक भारतीय भाषायीत कुश  
हीरानन्द तारस्यायन नारायणी,  
अभय
- 44-डा० मरनाम सिंह अण भातकण कृष्णा तुदर्भ पुस्तक प्रकाशन  
अजमेर, पु०सन्-1950
- 45-डा०सावित्री सिन्हा युग भारण कविदिनकर नैमल्ल पब्लिशिंग हाउस  
दिल्ली, पु०सन्-1963
- 46-डा०सुधीन्द्र हिन्दी कलिताकरी आत्माराम एण्ड सन,  
युगान्तर दिल्ली, पु०सन्-1950
- 47-सुमित्रानन्दन पति पर नल राजकमल प्रकाशन प्रा०लि०  
दिल्ली, पु०सन्-1967
- 48- " युगान्त लीक भारतीय प्रकाशन  
इलाहाबाद, पु०सन्। 968
- 49-डा० सुरेन्द्र नाथ दाम गुप्त सौन्दर्यतत्व भारतीय भिठार, जी एर प्रेस  
इलाहाबाद, पु०सन्-
- 50-डा० सूर्य प्रसाद कायावाच दीक्षित
- 51-बीसुखेड शर्मा काव्य शिल्प के आठाम आदर्श साहित्य प्रकाशन,  
दिल्ली, पु०सन्-1978
- 52-डा० बजारी प्रसाद द्विवेदी कल्पलता ज्ञान मंदन, लि० बनारस,  
पु० सन्-1960
- 53-डा०बजारी लाल शर्मा सौन्दर्य शास्त्र साहित्य भवन लि०  
इलाहाबाद, पु०सन्-1953

संस्कृत ग्रन्थ :-

-----

- |   |                     |   |
|---|---------------------|---|
| 1- श्री मती परोपकारिणी सुतैद सहिता<br>सम्पा |                     | चौखम्बा संस्कृत सीरीज<br>वाराणसी प्र०सन्-1941 |
| 2-कामिदहस                                   | अभिज्ञान शाकुन्तलम् | साहित्य अकादेमी,<br>नई दिल्ली, प्र०सन्-1965   |
| 3-आचार्य कुन्तक                             | वैकुण्ठ जीवन्तम्    | कम्बुता ओरिएण्टल<br>सीरीज, प्र०सन्-1988       |
| 4-आचार्य जगन्नाथ                            | रत्न गंगाधर         | चौखम्बा विद्याभवन<br>वाराणसी, प्र० सन्-1955   |
| 5-आचार्य दण्डि                              | काव्य लक्षण         | " -1958                                       |
| 6-माध्व तिलकसुत उक्त                        | शिशुपाल उक्त        | " -1972                                       |
| {टीकाका० प्र० हरमोविन्द शास्त्री }          |                     |   |
| 7-विश्वनाथ                                  | साहित्य दर्पण       | चौखम्बा विद्याभवन<br>वाराणसी, प्र० सन्-1957   |
| 8-सम्पा० श्री देवदत्त शास्त्री कामसूत्र     |                     |   |
| 9-उक्तसुत                                   |                     |   |
| 9-महाभारत                                   | महाभारत             |   |
| 10-सम्पा० जयशंकर ज्योषी                     | हलायुध कौषः         | हिन्दी समिति मुद्रणा<br>विभाग, उ०प्र०-1967    |

**पत्रिकाएँ :-**

- 1-समाजीक {सौन्दर्य शास्त्र विशेषांक} सन् -1957
- 2-कल्पना मासिक जनवरी 1964
- 3-नागरी पत्रिका नवम्बर 1978
- 4-हिन्दी अभिव्यक्त भारती सन्
- 5-अध्यात्मिक ! दिनेश्वर विशेषांक! मई जून 1971
- 6-मधुमती फरवरी 1978
- 7-इन्स्टिट वीकली डाफ उज्ज्वला अक्टूबर 1961

**कोश :-**

- 1-डा० श्रीरेन्दु वर्मा हिन्दी साहित्य कोश ! भाग 1,2! ज्ञान मण्डल  
लि० काशी  
सम्पत् 2020
- 2-वी० एल० आपटे संस्कृत हिन्दी कोश रट्टेन्ट इंगलिश संस्कृत  
हिक्कमरी, मोतीनाम  
बनारसीदाम, बाराणसी-1  
1965
- 3-सम्पा० जयशंकर जयंती हनुमन्त कोशः हिन्दी समिति सृष्टना  
विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ  
1967

### **ENGLISH BOOK**

1. Bertrand Russell      Marriage and morals  
London 1958.
2. B.Bosanquet      The Introduction to Hegel's  
Philosophy of fine Arts, London  
1886.
3.      "      "      History of Aesthetics  
London, 1956.
4. E.D.Croce      Aesthetics as Science of  
Expression and General  
Linguistics, London, 1922.
5. C.D.Lewis      The Poetic Image,  
London, 1948.
6. D.H.Lawrence      A propose of Lady Ch.Lover  
and other Essays,  
New York, 1961.
7. Encyclopaedia Americana Vol. I., New York, 1966.
8. H.W. Garrod      Poetical works of John Keats  
London, 1926.
9. Immanuel Kant      Critic of Judgement,  
Meredith, (London), 1952.
10. Warren and Wellek :      Theory of Literature,  
London, 1958.
11. William Tindall      :      The Literary symbol  
Elcomington, 1955.

.....